V. मान्यता के अपवाद

8. (1) (क) ब्रिटिश द्वीपों के किसी भाग की विधि के अधीन प्रदान की गई विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण की डिक्री; या

(ख) ब्रिटिश द्वीपों से बाहर अभिप्राप्त विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधि मान्यता को ग्रेट ब्रिटेन के किसी भी भाग में मान्यता नहीं दी जाएगी, यदि वह ऐसे समय पर प्रदान की गई थी या अभिप्राप्त किया गया था, जब ग्रेट ब्रिटेन के उस भाग की विधि के अनुसार (जिसके अंतर्गत प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के उसके नियम और इस ऐक्ट के उपबन्ध भी हैं), पक्षकारों के बीच कोई अस्तित्वयुक्त विवाह नहीं था ।

(2) इस धारा की उपधारा (1) के अधीन रहते हुए, इस ऐक्ट या उसकी धारा 6 द्वारा परिरक्षित किसी नियम के आधार पर ब्रिटिश द्वीपों से बाहर अभिप्राप्त विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता को मान्यता देने से तब और अब केवल तब इन्कार किया जा सकता है यदि,—

(क) वह पति या पत्नी में से एक के द्वारा,—

(i) दूसरे पक्षकार को कार्यवाहियों की सूचना देने के लिए ऐसे उपाय किए गए बिना, जो कार्यवाहियों की प्रकृति और सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, युक्तियुक्त रूप से किए जाने चाहिए थे ; या

(ii) दूसरे पक्षकार को कार्यवाहियों में भाग लेने के लिए ऐसा अवसर दिए बिना (सूचना के अभाव से अन्यथा किसी कारण से), जो उपर्युक्त मामलों को ध्यान में रखते हुए, युक्तियुक्त रूप से दिया जाना चाहिए था ;

अभिप्राप्त किया गया था ; या

(ख) उसकी मान्यता स्पष्ट रूप से लोकनीति के विरुद्ध होगी ।

(3) इस अधिनियम की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह विवाह-विच्छेद या पृथक्करण के लिए किन्हीं कार्यवाहियों में दिए गए त्रुटि सम्बन्धी किसी निष्कर्ष को या किसी भरणपोषण, अभिरक्षा या ऐसी किन्हीं कार्यवाहियों में किए गए अन्य आनुषंगिक आदेश को मान्यता दी जाने की अपेक्षा करती है ।"

10.19 इस प्रकार इंग्लैण्ड के ऐक्ट की धारा 8 मान्यता के लिए तीन अपवादों का कथन करती है, अर्थात्:—

(i) जहां विघटित किए जाने के लिए कोई तात्विक विवाह नहीं था, आदि;

(ii) नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन ;

(iii) लोकनीति से स्पष्ट विरोध ।

मान्यता को निर्धारित करने के लिए ये ही एक मात्र आधार बताए गए हैं ।

कोई अस्तित्वयुक्त विवाह ।

10.20 प्रथम अपवाद स्वयं स्पष्ट[1] है और उसके बारे में पहले ही बताया जा चुका है ।

10.21 द्वितीय अपवाद के बारे में यह है कि इस बात को मान्यता दी गई है कि परिस्थितियां किसी विदेशी न्यायालय को, तामील[2] से अभिमुक्ति देने में तामील को प्रतिस्थापित करने में न्यायोचित ठहरा सकती हैं । प्रथम दृष्ट्या, यदि प्रत्यर्थी यह साबित कर सके कि उसको कोई सूचना नहीं मिली है तो डिक्री मान्यता पाने की हकदार नहीं होगी । किन्तु उसे विधि की मान्यता दी जाएगी, यदि—

(i) विदेशी न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि तामील के उसके नियमों का सम्यक् रूप से अनुपालन किया गया है[3] ;

(ii) वे नियम स्वयं नैसर्गिक न्याय[4] के विरुद्ध नहीं है ; और

---

1. ऊपर पैरा 10.15 ।
2. मेकलपिन बनाम मेकलपिन, (1958) प्रोबेट, 35, 45 देखिए ।
3. इग्रा बनाम इग्रा (1951) प्रोबेट 404; हार्नेट बनाम हार्नेट (1971) 1 आल ई० आर० 98 देखिए ।
4. मेकलपिन बनाम मेकलपिन, (1958) प्रोबेट 35, 45 ।

(iii) सूचना का अभाव अर्जीदार के कपट[1, 2, 3] के परिणामस्वरूप नहीं हुआ है।

किन्तु **हार्लेट** बनाम **हार्लेट**[4] में पुष्ट की गई हाल की उक्ति यह इंगित करती है कि प्रत्यर्थी के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि उसने—डिक्री की विधिमान्यता पर आक्रमण करने के अपने अधिकार का—इस मामले में मान्यता के लिए स्वयं अर्जी दे कर और संभवतः पुनः विवाह कर के, अधित्यजन कर दिया है।

सभी परिस्थितियों पर विचार किया जाना।

10.22 सूचनाओं की तात्विकता पर विचार करने में या अन्यथा, सभी परिस्थितियों पर विचार किया जाना होगा। निराकरण या अन्य एकपक्षीय विवाह-विच्छेदों के मामलों में सूचना असंगत है क्योंकि सूचना प्रत्यर्थी को विवाह-विच्छेद का प्रतिवाद[5] करने में समर्थ नहीं बनाएगी।

स्पष्ट रूप से लोकनीति के विरुद्ध होना।

10.23 अन्तिम अपवाद ("लोक नीति" शीर्ष वाला) को हैग कन्वेन्शन के आर्टिकल 10 द्वारा न्यायोचित ठहराया गया है। इंग्लैण्ड ऐक्ट की धारा में "स्पष्टतः" शब्द की बाबत यह आलोचना की गई है कि उससे कोई परिवृद्धि नहीं होती है।[6] वास्तव में, हाउस आफ कामन्स के समिति प्रक्रम में "स्पष्ट" शब्द हटाने के लिए प्रयत्न किया गया था किन्तु उसको अस्वीकृत कर दिया गया था। चूंकि इंग्लैण्ड की विधि में "लोकनीति" तत्व है उससे अधिक यूरोपीय विधि में लोकादेश है, अतः कन्वेन्शन का आर्टिकल 10, लोकादेश के अधिक उदार उपयोग को निर्बन्धित करने का प्रयास कर रहा था। सालिसिटर जनरल ने हाउस आफ लार्ड्स में कहा[7] कि (स्पष्टतः) अभिव्यक्ति अश्व (लोकनीति) को कुछ बकम उच्छृंखल बनाती है——— "स्पष्ट" शब्द अश्व में अन्तर्निहित शक्ति की डिक्री को सूचित करने के लिए आशयित है।"

10.24 उन परिस्थितियों के बारे में जिनमें मान्यता इंग्लैण्ड की सुभिन्न लोकनीति के विरुद्ध होगी, कोई अन्तिम सूची नहीं बनाई जा सकती। मैकलफिन[8] लोकनीति के एक उपयोजन का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

मेयर[9] वाला मामला विबाध्यता का मामला था। जर्मन यहूदी की "आर्य" पत्नी को उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह-विच्छेद की डिक्री अभिप्राप्त करने के लिए विवश किया गया था। उसने न्यायालय में इस घोषणा के लिए अर्जी दी कि विवाह-विच्छेद अविधिमान्य था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि डिक्री बाध्यता द्वारा दूषित थी—यह ऐसी धारणा थी जिसका कि विवाह[10] के सम्बन्ध में विकास किया गया।

धारा 8(2)(ख)—लोकनीति।

10.25 धारा 8(2)(ख) के अधीन, जिसके प्रति पहले ही निर्दिष्ट[11] किया जा चुका है, विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता को स्वीकृति दी जाने से इन्कार किया जा सकता है, यदि "वह स्पष्ट रूप से लोकनीति के विरुद्ध है"। इस खंड के प्रति निर्देश से दो टिप्पणियां की गई हैं। प्रथमतः, "लोकनीति" की कोई परिभाषा नहीं है, और उसके द्वारा प्रदत्त की गई शक्ति निश्चित रूप से व्यापक है। फिर भी, "स्पष्टतः" शब्द न्यायालय को असम्यक् रूप से बाधा डालने के विरुद्ध सावधान करता है। इस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि हेग कन्वेन्शन का आर्टिकल 10 यह उपबन्ध करता है कि "संविदाकारी राज्य विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को मान्यता देने से इन्कार कर सकते हैं", यदि ऐसी मान्यता स्पष्ट रूप से उनकी लोकनीति (लोकादेश) के विरुद्ध है। ऐसा खंड प्राइवेट विधि के विषय पर हुए बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशनों में पाया गया है, उदाहरण के लिए, पोषण दायित्वों (एलिमेंट्री आबलिगेशन्स) पर कन्वेंशन (15 अप्रैल, 1958, आर्टिकल 2), दत्तकग्रहण (एडाप्शन) पर कन्वेंशन (15 नवम्बर, 1965 आर्टिकल 15) और इसी प्रकार अन्य कन्वेन्शन। किन्तु यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि "लोकादेश" पद लोकनीति की कामन ला की धारणा के बजाय, लोकादेश की यूरोपीय धारणा के प्रति निर्देश करता है। कन्वेंशन में उल्लिखित यूरोपीय

1. मिडिलटन बनाम मिडिलटन (1967) प्रोबेट 62।
2. हार्लेट बनाम हार्लेट (1971) आल ई० आर०, 98।
3. कपट के बारे में आगे का अध्याय 17 देखिए।
4. हार्लेट बनाम हार्लेट (1971) 1 आल ई० आर०, 98, 102(1)।
5. माहर बनाम माहर (1951) प्रोबेट 342, 344, 345।
6. एच० एल० जिल्द 816, स्तम्भ 1552-1555, 1557 देखिए।
7. एच० एल० डिबेट्स, जिल्द 816, स्तम्भ 1553 (सालिसिटर जनरल)।
8. मैकलफिन बनाम मैकलफिन, (1958) प्रोबेट 35।
9. रे मेयर, (1971) 2 डब्ल्यू० एल० आर० 401।
10. जैक्टर बनाम जैक्टर (1970) 3 आल ई० आर० 905 देखिए।
11. ऊपर पैरा 10.23।

धारणा का विस्तार उस कन्वेंशन के आर्टिकल 6 द्वारा थोड़ा संकीर्ण कर दिया गया है जो कि अन्य बातों के साथ साथ, यह उपबन्ध करता है कि वह राज्य जिसमें मान्यता की मांग की गई है, आर्टिकल 10 के उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए विनिश्चय के गुणागुणों का पुनर्विलोकन नहीं करेगा । दूसरी ओर इंग्लैण्ड की धारा (धारा 8) में केवल "लोकनीति" पद का उपयोग किया गया है ।

10.26 इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8(2) (ख) के प्रति निर्देश से एक और विषय जिस पर कि ध्यान दिया जाना चाहिए, यह है कि यह धारा कपट के प्रश्न पर मौन है, सिवाय इस बात के कि कपट "लोकनीति के अन्तर्गत आ सकता है"।[1] हमारा विचार है कि यह वांछनीय है कि इस बारे में विनिर्दिष्ट रूप से चर्चा की जाए । यह उल्लेखनीय है कि कपट के बारे में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13 में विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख किया गया है । हम यह भी कह सकते हैं कि यह उच्चतम न्यायालय के निर्णय[1] में भी आया है । हम इस विषय पर बाद में[2] चर्चा करेंगे । कपट ।

10.27 इंग्लैण्ड के एक्ट की धारा 8(3) के अधीन कतिपय आनुषंगिक आदेशों को मान्यता नहीं दी गई है । आनुषंगिक आदेश ।

VI. प्रकीर्ण

10.28 इंग्लैण्ड के ऐक्ट की धारा 9 और धारा 10(1) और धारा 10(2) हमारे प्रयोजनों के लिए तात्विक नहीं हैं । इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 9-10 ।

इस ऐक्ट की धारा 10(3) "देश" की परिभाषा निम्नलिखित रूप में करती है—

"(3) इस ऐक्ट में "देश" के अन्तर्गत यूनाइटेड किंगडम का कोई उपनिवेश या अन्य आश्रित राज्यक्षेत्र है, किन्तु इस ऐक्ट के प्रयोजनों के लिए कोई व्यक्ति, ऐसे किसी राज्यक्षेत्र का राष्ट्रिक केवल तभी माना जाएगा, जब उस राज्यक्षेत्र की नागरिकता या राष्ट्रिकता की विधि यूनाइटेड किंगडम की विधि से पृथक् हो और वह व्यक्ति उस विधि के अधीन उस राज्यक्षेत्र का राष्ट्रिक या नागरिक हो ।"

इंग्लैण्ड के ऐक्ट की धारा 10(4) इस प्रकार है—

"(4) विदेशी विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों, तथा ब्रिटिश द्वीपों से बाहर अभिप्राप्त अन्य विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों से सम्बन्धित इस ऐक्ट के उपबन्ध, उन उपबन्धों के प्रारम्भ की तारीख से पूर्व अभिप्राप्त किए गए विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को तथा उस तारीख को या उसके पश्चात् प्राप्त किए गए विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को लागू होते हैं और ऐसे विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की दशा में, जब उस तारीख के पूर्व अभिप्राप्त किया गया है वे--

(क) उस तारीख के पूर्व किसी समय के सम्बन्ध में और किसी पश्चात्वर्ती समय के सम्बन्ध में उसकी विधिमान्यता को, यथास्थिति, मान्यता दी जाने की अपेक्षा करते हैं या मान्यता को प्रवारित करते हैं; किन्तु

(ख) किन्हीं ऐसे सांपत्तिजनक अधिकारों को प्रभावित नहीं करते हैं जिनका कि कोई व्यक्ति उस तारीख के पूर्व हकदार हुआ था या वहां लागू नहीं होते हैं जहां विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता का प्रश्न, उस तारीख के पूर्व ब्रिटिश द्वीपों में किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया है ।

संक्षेप में यह इस ऐक्ट का संक्षिप्त सर्वेक्षण है ।

---

1. ऊपर पैरा 1.1 ।
2. कपट से सम्बन्धित आगे का अध्याय, (अध्याय 18) देखिए ।

अध्याय 11

अधिकारिता के बारे में इंग्लैंड की विधि और 1972 का ऐक्ट

अध्याय का विस्तार क्षेत्र।

11.1 अब हम विवाह के विघटन की बाबत अधिकारिता के बारे में इंग्लैण्ड की विधि के बारे में अत्यंत संक्षेप में चर्चा करेंगे। इस विषय का रोचक इतिहास है। इस विषय पर विधि के विकास के निम्नलिखित प्रक्रम ज्ञातव्य हैं :

(1) ली मैसूरिये के पूर्व का युग अर्थात् 1895 से पूर्व।

(2) ली मैसूरिये का सिद्धान्त।

(3) ली मैसूरिये के पश्चात् कानूनी विकास।

(4) 1973 का ऐक्ट—दि डौमिसाइल एण्ड मैट्रीमोनियल प्रोसीडिंग्स ऐक्ट, 1973।

ली मैसूरिये के पूर्व का युग।

11.2 इंग्लैण्ड के न्यायालयों को 1857 तक विवाह-विच्छेद वाले मामलों को ग्रहण करने का प्राधिकार नहीं दिया गया था। धार्मिक न्यायालयों को, साधारणतया, शय्या से पृथक्करण का प्राधिकार दिया गया था, और धार्मिक न्यायालयों की विस्तृत अधिकारिता निवास पर आधारित थी, न कि अधिवास[1] पर, और पार्लियामेंट जब प्राइवेट ऐक्ट द्वारा विवाह-विच्छेदों के लिए मंजूरी देती थी तो अर्जीदार के अधिवास[2] का ध्यान रखे बिना विवाह-विच्छेदों के लिए मंजूरी देती थी।

मैट्रीमोनियल कालेज ऐक्ट, 1857 के अधीन विवाह विषयक अधिकारिता का प्रयोग करते समय इंग्लैण्ड के न्यायालयों ने प्रारम्भ में अन्तिम बार के निश्चयतः अधिवास नियम को नहीं अपनाया। वह नियम, 1895 में ली मैसूरिये में[3] बाद में अपनाया गया। स्पष्ट है कि ली मैसूरिये से पूर्व, वहां विवाह[4] के देश के न्यायालयों की अधिकारिता सीमित करने वाला "संविदात्मक सिद्धान्त" प्रचलित था।

लार्ड जस्टिस क्रेसवेल ने **फोर्सटर** बनाम **फोर्सटर**[5] में निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :

> "मुझे वास्तव में बहुत प्रसन्नता होती यदि विधानमंडल ने यह कहा होता कि न्यायालय को इंग्लैण्ड में अधिवसित व्यक्तियों पर के सिवाय कोई अधिकारिता नहीं थी। जब लार्ड केमबेल लार्ड चान्सलर थे, तो मैंने उनसे इस प्रश्न को तय करने के लिए विधेयक लाने के लिए और मेरी अधिकारिता को परिभाषित करने के लिए अनुरोध किया था; किन्तु उन्होंने कहा था, "मैं ऐसा नहीं कर सकता"। जब कभी वह प्रश्न उठाया जाए, तो वह विधिक सिद्धान्तों के आधार पर विनिश्चित किया जाना चाहिए। इसकी परिभाषा नहीं की जा सकती।"

ली मैसूरिये का सिद्धान्त।

11.3 किन्तु कुछ आगा पीछा करने के पश्चात् अधिवास का सिद्धान्त दृढ़ता से स्थापित कर दिया गया। 1895 में प्रिवी कौंसिल की जूडिशियल कमेटी ने **ली मैसूरिये** बनाम **ली मैसूरिये**[6] में, सीलोन से अपील की जाने पर, इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड के मामलों का पुनर्विलोकन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि

---

1. **बाल बनाम बाल** (1949) 2 आल ई० आर० 927, 928 (न्या० पीयर्स)।
2. देखिए —
   (क) ग्रेवसन जूडिशियल इन्टरप्रिटेशन आफ डाइवोर्स जुरिसडिक्शन इन दि कन्फिलक्ट आफ लॉ (1954) 17 माडर्न रव्यू, 501;
   (ख) ग्रिसवोल्ड, 'डाइवोर्स जुरिसडिक्शन एण्ड रिकोगनिशन आफ डाइवोर्स डिक्रीज—ए कम्पैरेटिव स्टडी (1951) 65 हार्व, एल रिव्यू, 193।
   (ग) टिप्पण (1945) 22, ब्रिट वाई बी इन्टर ला 264।
3. **ली मैसूरिये बनाम ली मैसूरिये** (1895) ए० सी० 517 (पी०सी०)।
4. डिके, कन्फिलक्ट आफ लाज (7वां संस्करण, 1958) पृष्ठ 290।
5. **फोर्सटर बनाम फोर्सटर** (1862) 3 एस० डब्ल्यू० एण्ड टी० आर० 144, 155।

अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार विवाहित दम्पत्ति का तत्समय के लिए अधिवास हो, उनके विवाह का विघटन करने के लिए अधिकारिता की सच्ची कसौटी हो सकती है।

ली मैसूरिये बनाम **ली मैसूरिये**[1] के पश्चात् से इंग्लैण्ड के न्यायालयों ने विधिमान्य विवाहों का विघटन करने के लिए अधिकारिता प्रदान करने वाले कानून में, साधारण शब्दों का इस प्रकार अर्थान्वयन किया है, मानों वे उन विवाहों तक सीमित हैं, जिनके पक्षकार इंग्लैण्ड [2,3,4] में अधिवसित हैं।

निबोयत का मामला।

11.4 न तो मैट्रोमोनियल काजेज ऐक्ट, 1857 में और न सुप्रीम कोर्ट आफ जुडीकेचर ऐक्ट, 1873 में कोई ऐसा स्पष्ट उपबन्ध था जो कि वाद से सम्बन्धित पति पत्नी के अधिवास के प्रति निर्देश से, विवाह के विघटन की डिक्री देने के लिए न्यायालय की अधिकारिता सीमित करता हो यही कारण है कि आरम्भ में, इस बाबत स्थिति के बारे में कुछ अनिश्चितता और यहां तक कि न्यायिक अस्थिरता भी थी। इसका उदाहरण **निबोयत** बनाम **निबोयत**[5] से दिया जा सकता है जिसमें अपील न्यायालय ने विघटन मंजूर करने के लिए नई अधिकारिता के सिद्धान्त को लागू किया, तथा यह नियम अकृतता के मामलों में धार्मिक न्यायालयों द्वारा प्रयुक्त की गई पूर्व अधिकारिता को लागू था और निवास पर आधारित था। यह कानूनों के अर्थान्वयन के साधारण नियम का उपयोजन है कि तत्प्रतिकूल स्पष्ट शब्दों के अभाव में, उनका ऐसा अर्थ लगाया जाना चाहिए जिससे कि वे लोक अंतर्राष्ट्रीय विधि या प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि के साधारणतया मान्यताप्राप्त नियमों के अर्थ में शिष्टाचार के विरोधी न हों।

अधिवास की कसौटी अमरीकी विधि से खोजी गई थी।

11.5 इस प्रकार, अधिकारिता के लिए आधार के रूप में अधिवास को कसौटी ली मैसूरिये में 1895 में अपनाई गई थी और यह कहा गया है[6] कि ऐसा मुख्य रूप से एलिकन विधि आश्रय लेकर किया गया था। यह भी बताया गया है कि **ली मैसूरिये** बनाम **ली मैसूरिये** में प्रिवी कौन्सिल ने यह अभिनिर्धारित करने में, कि किसी विवाह का विघटन करने की अधिकारिता अधिवास के न्यायालयों तक सीमित है, **शा** बनाम **गोल्ड**[7] का आश्रय लिया था और उस मामले में स्टोरी के टिप्पणों पर निर्भर किया गया था। विवाह का विघटन करने के लिए अधिकारिता के अनन्य आधार के रूप में अधिवास को कसौटी ली मैसूरिये के सिद्धांत के अधीन दृढ़ता से स्थापित की गई थी। इस प्रयोजन के लिए पत्नी का अधिवास नहीं होता है जो कि पति का होता है। साधारणतया उसका पृथक् अधिवास नहीं हो सकता।

ली मैसूरिये के पश्चात् के विकास—1937 का ऐक्ट—अभित्यक्त पत्नियां।

11.6 पत्नी के अधिवास से संबंधित नियम ने, अर्थात् इस नियम ने कि उसका पृथक् अधिवास नहीं हो सकता—कठिनाई उत्पन्न की। मैट्रीमोनियल काजेज ऐक्ट, 1937 (सर एलन हरबर्टस का ऐक्ट) ने इंग्लैण्ड की ऐसी पत्नियों के बारे में कुछ प्रारम्भिक कठिनाईयों को हटाया, जो (क) अपने पतियों द्वारा अभित्यक्त कर दी गई थीं और जिन्होंने तदुपरि विदेशी अधिवास अर्जित कर लिया था, या (ख) उनके पतियों के विवासित हो जाने पर इंग्लैण्ड में विवाह-विच्छेद संबंधी उपचारों से उन्हें वंचित कर दिया गया था। दोनों में से किसी भी मामले में पति के नये अधिवास वाले न्यायालय में कार्यवाही करने के स्थान पर पत्नी, 1937 के ऐक्ट के अधीन, यदि पति इंग्लैण्ड में अधिवसित था तो इंग्लैण्ड के न्यायालय में कार्यवाही कर सकती थी।

अभित्यक्त पत्नियों की प्रेरणा पर, विवाह-विच्छेद की बाबत अधिकारिता में परिवर्तन[8] किया गया था, जिनके पास विवाह के विघटन के लिए आधार थे किन्तु जिनके पति विदेश[9] में अधिवसित थे। ऐसी पत्नियां, 1949 के ऐक्ट के अधीन, यदि वे इंग्लैण्ड में निवासो थीं और मामूली तौर से इंग्लैण्ड में कार्यवाहियां

1. ली मैसूरिये बनाम ली मैसूरिये (1895–99) आल ई० आर० 836 (1895) ए० सी० 444।
2. एल्बर्ट बनाम कोक (1926) आल ई० आर० 525, (1926) अपील केसेज, 444 के लिए अपील केसेज।
3. एच० बनाम एच० (1928) प्रोबेट, 206।
4. हर्ड बनाम हर्ड (1936) 2 आल ई० आर० 1516 (1936) प्रोबेट 205।
5. निबोयत बनाम निबोयत (1878) 4 पी० डी० 1।
6. एहरेंजवेग, कान्फिलक्ट आफ लाज, (1962), पृष्ठ 235।
7. शा बनाम गोल्ड (1868), एल० आर० 3 एच० एल० 55, 85।
8. आगे का पैरा 11.5।
9. मि० कमिश्नर लाटे, क्यू० सी० "डाइवोर्स एण्ड नलिटी" (1945) 40 ट्रांजेक्शन्स आफ दि ग्रोशियस सोसाइटी, 111, 112, 113।

प्रारम्भ करने के ठीक पूर्व के तीन वर्षों की कालावधि के दौरान वहां निवास कर रहीं थीं[1], तो इंग्लैण्ड में विवाह-विच्छेद के लिए वाद[2] ला सकती थीं।

"यह उपबंध मैट्रीमोनियल काजेज ऐक्ट की धारा 18 में और 1965 के ऐक्ट की धारा 40 में और उसके बाद को पुनरधिनियमितियों में पुनः अधिनियमित किया गया था। इस धारा में कुछ "असाधारण कानूनी उपबंध" समाविष्ट किया गया था, अर्थात् यह उपबंध कि अधिकारिता के इस विशेष रूप का प्रयोग करने में विवाचकों का अवधारण उस विधि के अनुसार किया जाएगा जो अभित्यजन या विवासन[3] के समय लागू होगी।"

सारतः 1937 के ऐक्ट का यह उपबंध विधि के पश्चात्वर्ती पुनरीक्षणों में पुनः अधिनियमित किया गया था।

1944 का ऐक्ट—युद्ध विवाह।

11.7 पत्नी की यह विलक्षण स्थिति इस कारण और विकट हो गई थी कि इंग्लैण्ड की बहुत से स्त्रियों का इंग्लैण्ड में रहने वाले कामनवेल्थ और एलाइड फोर्सेस के सदस्यों के साथ, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान विवाह हो गया था। ये ऐसे व्यक्ति थे जो कभी इंग्लैण्ड[4] में अधिवसित नहीं थे। इससे 1944 में मैट्रीमोनियल काजेज (वार मैरेजिज) ऐक्ट पारित किया गया, जिसने एक रियायत और दी। इसमें कतिपय रक्षोपायों के अध्यधीन रहते हुए, ऐसे पुरुषों को अंग्रेज पत्नियों के लिए इस बात के होते हुए भी कि उनके पति विदेश में अधिवसित थे, यह संभव बनाया कि वे इंग्लैण्ड में विवाह-विच्छेद संबंधी न्यायालयों में पहुंच सकें। किन्तु इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह रियायत केवल सितम्बर, 1939 से जून, 1950 के बीच किए गए विवाहों को लागू होती है।

1973 के पूर्व की स्थिति—संक्षेप में।

11.8 और 11.9 उपरोक्त स्थिति, सारतः, 1973 तक बनी रही। 1973 के पूर्व की स्थिति को, सुविधापूर्वक, इस विषय पर बहुत प्रयुक्त कृति[5] के शब्दों में, इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है—

"इंग्लैण्ड के न्यायालयों को निम्नलिखित परिस्थितियों में विवाह के विघटन के लिए और विवाह-विच्छेद की डिक्री सुनाने के लिए कार्यवाहियां ग्रहण करने की अधिकारिता है, जिनमें से प्रथम परिस्थिति, पति या पत्नी किसी के भी द्वारा प्रस्तुत की गई अर्जी को लागू होती है और अन्य परिस्थितियां केवल पत्नी द्वारा प्रस्तुत की गई अर्जी को लागू होती हैं :

1. यदि विवाह के दोनों पक्षकार कार्यवाहियों के प्रारम्भ के समय इंग्लैण्ड में अधिवसित हैं [लियोन (1967)][6]

2. यदि किसी पत्नी का उसके पति द्वारा अभित्यजन कर दिया गया है या पति को युनाइटेड किंगडम से विवासित कर दिया गया है और वह अभित्यजन या विवासन के ठीक पूर्व इंग्लैण्ड में अधिवसित था [1965 का ऐक्ट, धारा 49 (1)]।

3. यदि कोई पत्नी कार्यवाहियों के प्रारंभ के ठीक पूर्ववर्ती तीन वर्ष की कालावधि के दौरान इंग्लैण्ड में मामूली तौर पर से निवासी[7] है और रही है, और उसका पति युनाइटेड किंगडम के किसी अन्य भाग में या चैनल आइलैण्ड में या आयल आफ मैन में अधिवसित नहीं है।"

"अधिकारिता प्रदान करने वाली अंतिम दो स्थितियां इस साधारण सिद्धांत का अपवाद हैं कि विवाह-विच्छेदों की अधिकारिता अधिवास पर आधारित हैं और वे ऐसी पत्नियों के लिए कठिनाई कम करने के लिए प्रारम्भ की गई थीं जो अन्यथा, इन परिस्थितियों में, इस नियम के कारण कि पत्नी का अधिवास हमेशा अपने पति का अधिवास ही होता है, विदेश में विवाह-विच्छेद के लिए कार्यवाही संस्थित करने के लिए विवश होतीं।"

1. "मामूली अधिवास" पद के लिए, हापकिन्स बनाम हापकिन्स (1951) प्रोबेट 116, (1951) 2 आई० ई० आर० 1035 देखिए।
2. सेक्शन 1(1)(क), ला रिफार्म (मिसलेनियस प्रोविजन्स) ऐक्ट, 1949।
3. शा बनाम गोल्ड (1868) एल० आर० 3 एच० एल० 55,85।
4. मि० कमिश्नर लैटे, क्यू० सी० डाइवोर्स एण्ड नलिटी" (1955) 40 ट्रांजेक्शन्स आफ दि गोशियस सोसाइटी, 111, 113।
5. न्यायाधीश ग्रान्ट, फैमिली ला (1970), पृष्ठ 110।
6. लियोन बनाम लियोन (1967) प्रोबेट 275 (पत्नी के लिए निवास की आवश्यकता नहीं है)।
7. कोई पत्नी मामूली रूप से इंग्लैंड में निवासी है यदि उसका वहां पर वास्तविक घर है। तीन वर्ष की कालावधि सतत होनी चाहिए किन्तु उदाहरण के लिए विदेश में बिताई गई छुट्टियां इसमें बाधा नहीं डालती हैं [स्ट्रेन्सकी बनाम स्ट्रेन्सकी (1954)]।

"न तो किसी पक्षकार को राष्ट्रिकता और न वह स्थान, जहां विवाह अनुष्ठापित किया गया था अधिकारिता के संबंध में सुसंगत है।"

11.9 इंग्लैण्ड में, 1973 में, डोमिसाइल एण्ड मैट्रीमोनियल प्रोसिडिंग्स ऐक्ट,[1] पारित किया गया था और इस ऐक्ट ने उपरोक्त स्थिति में सारवान् उपांतरण किए थे। यहां हमें इसके सभी उपबंधों की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे प्रयोजनों के लिए यह कहना पर्याप्त है कि इसने अधिकारिता के संबंध में दो महत्वपूर्ण संशोधन किए, अर्थात् (i) पत्नी जब पृथक् अधिवास अर्जित कर सकती है, (ii) इंग्लैण्ड के न्यायालय अधिवास के साधारण आधार के अलावा "आभ्यासिक निवास" के आधार पर भी विवाह-विच्छेद संबंधी अधिकारिता का प्रयोग कर सकते हैं। 1973 का ऐक्ट।

1973 के ऐक्ट की धारा 5(2) महत्वपूर्ण है और यह इस प्रकार है--

"धारा 5(2)--न्यायालय को विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के लिए कार्यवाहियां ग्रहण करने की अधिकारिता तब और केवल तब होगी यदि विवाह के पक्षकार में से कोई पक्षकार--

(क) उस तारीख को जब कार्यवाहियां आरंभ की जाती हैं, इंग्लैण्ड और वेल्स में अधिवसित है; या

(ख) उस तारीख को समाप्त होने वाले एक वर्ष की संपूर्ण कालावधि के दौरान इंग्लैण्ड और वेल्स में अभ्यासतः निवासी था।

11.10 विवाह-विच्छेद के लिए अधिकारिता संबंधी अन्य आधारों को इस ऐक्ट द्वारा उत्सादित किया जाता है। यह ऊपर उद्धृत धारा 5(2) में "केवल तब" शब्दों का प्रभाव है। पुराने आधारों का उत्सादन।

कोई पत्नी अब इन आधारों पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी देने में समर्थ नहीं रहेगी; (i) कि वह अभित्यक्त की गई थी या उसका पति विवासित किया गया था और वह ऐसे कार्यों के ठीक पूर्व[2] इंग्लैंड और वेल्स में अधिवसित था, या (ii) इस आधार पर कि वह इंग्लैंड और वेल्स में मामूली तौर से निवासी है और तीन वर्ष से निवासी रही है एवं उसका पति ब्रिटिश द्विपों[3] के किसी अन्य भाग में अधिवसित नहीं है।

1. डोमिसाइल एण्ड मेट्रीमोनियल प्रोसीडिंग्स ऐक्ट, 1973।
2. ऊपर पैरा 11.4।
3. ऊपर पैरा 11.6।

अध्याय 12

परस्परता

I. प्रारम्भिक

प्रारम्भिक।

12.1 यदि मान्यता के बारे में कानून बनाने की आवश्यकता है तो यह सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि उसका क्या आधार होना चाहिए। इस अध्याय में हम इस प्रश्न पर विचार करने की प्रस्थापना करते हैं कि कि मान्यता[1] के आधारों के संबंध में क्या यह आवश्यक है कि किसी विशेष आधार पर विवाह विच्छेद या पृथक्करण की मान्यता के लिए केवल वही उपबंध किया जाना चाहिए जहां संबंधित विदेश स्वयं उस आधार पर विवाह-विच्छेद या पृथक्करण के लिए प्रदान की गई भारतीय डिक्रियों को मान्यता देते हैं।

II. परस्परता—प्रथम अभिप्राय

"परस्परता" अभिव्यक्ति के दो अर्थ।

12.2 यह स्वभावतः "परस्परता" के पहलू को सामने लाता है। अब हम यह स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि "परस्परता" पद का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है। प्रथम अर्थ में इस का अभिप्राय यह है कि विवाह विच्छेद वादों में विदेशी डिक्रियों की मान्यता के संबंध में हमारी विधि द्वारा, जहां तक संभव हो, मान्यता की वही कसौटी अपनाई जानी चाहिए जो हमारे अपने न्यायालयों द्वारा विवाह-विच्छेद अधिकारिता के प्रयोग के संबंध में विधि द्वारा अधिकथित है। इस पहलू का "तुल्यता"[2] के सिद्धांत के रूप में बेहतर रूप में वर्णित किया जा सकता है। इस अर्थ में परस्परता का हमारी डिक्रियों को मान्यता देने में विदेशी न्यायालयों द्वारा अपनाई गई कसौटी से सम्बध नहीं है, किन्तु उसका सम्बन्ध भारतीय न्यायालयों द्वारा अपनी अधिकारिता[3] का प्रयोग करने में अपनाई गई कसौटी से है। यह पहलू अर्थात् तुल्यता का पहलू, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, सम्पूर्ण मान्यता के विषय से[4] निश्चित रूप से सुसंगत है। इस विषय पर हमारा अपना दृष्टिकोण यह है कि इस अर्थ में परस्परता पर वैधतः विचार किया जा सकता है।

डीन ग्रिसवोल्ड का दृष्टिकोण।

12.3 यह दृष्टिकोण ट्रैवरस बनाम होली[5] के इंग्लैंड के एक मामले में अपनाया गया था और उसके द्वारा निर्दशित किया गया है। उस विनिश्चय के पूर्व भी इस दृष्टिकोण के समर्थक थे जैसे डीन ग्रिसवोल्ड[6-7]।

उदाहरण के लिए, यदि विदेशी न्यायालयों की डिक्री विदेश में अधिवसित पक्षकारों के बीच विवाह का विघटन करने वाली थी तो भारतीय न्यायालयों को उस डिक्री द्वारा प्रभावशील किए गए विघटन को इस प्रश्न पर विचार किए बिना मान्यता देनी चाहिए कि विदेशी न्यायालय स्वयं अधिवास के आधार पर भारत में प्रदान की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री को मान्यता देगा या नहीं।

12.4 इस पहलू को, जैसा कि पहले कहा जा चुका है[8], "तुल्यता" पद का प्रयोग कर के बेहतर रूप से वर्णित किया जा सकता है। साधारणतः यह अवांछनीय है कि वहां मान्यता देने से इन्कार किया जाए जहां वह न्यायालय स्वयं, जिसमें मान्यता की मांग की गई है, न्याय देने वाले न्यायालय द्वारा प्रयोग किए गए अधिकारिता संबंधी आधार के समतुल्य आधार का प्रयोग करता है। "तुल्यता" शब्द इस संदर्भ में इसी पहलू को सूचित करता है।

---

1. ऊपर अध्याय 10.11.
2. वोन मेहरन और ट्रोटमेन की पुस्तक (1968), "रिकोगनिशन आफ फारेन डाइवोरसेज" को 81 हावर्ड ला रिव्यू 1600 में देखिए.
3. ऊपर पैरा 6.4 देखिए.
4. ऊपर अध्याय 1 भी देखिए.
5. ट्रेवरस बनाम होली (1953) 2 आल ई० आर. 794.
6. ग्रिसवोल्ड "रिकोगनिशन आफ फारेन डाइवोरसेज" (1952) 65 हमवर्ड ला रिव्यू 193, 227.
7. उसके बाद वाले टिप्पण के लिए ग्रिसवोल्ड को (1954) 67 हावर्ड ला रिव्यू में देखिए.
8. ऊपर पैरा 12.2.

औचित्य।

12.5 इस अर्थ में, वे सिद्धांत[1] जिन पर हमारे न्यायालय अधिकारिता का प्रयोग करते हैं और वे सिद्धांत जिन पर हमारे न्यायालय विदेशी न्यायालय द्वारा प्रयोग की गई अधिकारिता को मान्यता देते हैं, जहां कहीं व्यवहार्य हो, न्याय में एक दूसरे के अनुरूप होने चाहिएं, यद्यपि यह आवश्यक रूप से विवक्षित नहीं है कि किसी विशेष समय पर दोनों सभी दृष्टियों से एक दूसरे के समान होने चाहिएं। यह उपधारणा करके इस समस्या को अधिक सरल बनाने की आवश्यकता नहीं है कि दोनों नीतियां—अधिकारिता ग्रहण करने के लिए मानकों में निहित नीति—और मान्यता के लिए मानकों में निहित नीति समान है। वे नीतियां, जो अधिकारिता ग्रहण करने के लिए मानकों के चयन के मूल में हैं, मान्यता के लिए भी उपयोगी आरम्भ बिन्दु प्रदान करती हैं।

इंग्लैंड की पद्धति।

12.6 एक लेखक ने कथन किया है कि बहुत से ब्रिटिश राज्य अब अधिकारिता का दावा करते हैं और वे उन अंतर्राष्ट्रीय अधिकारिता संबंधी नियमों में, जोकि कामन ला में विदेशी निर्णयों के प्रवर्तन और मान्यता के लिए आधार हैं, सम्मिलित राज्यक्षेत्रीय धारणाओं से सारतः अधिक व्यापक आधारों पर इसका प्रयोग करना तात्पर्यित करते हैं। इस प्रकार, यह अस्वाभाविक नहीं था कि ऐसे न्यायालयों द्वारा दिए गए विदेशी निर्णयों को प्रवर्तित करने और मान्यता देने के लिए प्रयास किए गए थे जो न्यायालय यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय रूप से सक्षम नहीं थे किन्तु जो अधिकारिता संबंधी ऐसे आधार का, जो कि उस आधार के समान था जिसका कि उस न्यायालय ने दावा किया था, प्रयोग करना तात्पर्यित करते थे। ऐसा विस्तारण विवाह-विच्छेद की विदेशी डिक्रियों को मान्यता देने के क्षेत्र में किया गया था।

III. परस्परता—द्वितीय अभिप्राय

दूसरे अर्थ में परस्परता

12.7 अब हम दूसरे अर्थ में परस्परता पर विचार करेंगे। हम उसे आधार रूप में अपनाने के पक्ष में नहीं हैं, किन्तु हम यह कह सकते हैं कि सैद्धांतिक रूप से दूसरे अर्थ में परस्परता का अभिप्राय यह है कि हमारे न्यायालयों द्वारा मान्यता दिए जाने का आधार और विदेशी न्यायालयों द्वारा मान्यता दिए जाने के आधार समान होने चाहिए, या दूसरे शब्दों में हमारी विधि हमारे न्यायालयों को, अधिकारिता संबंधी विशेष आधार पर प्रदान की गई विदेशी डिक्री को, मान्यता देने के लिए विवश न करे, यदि वह विशेष आधार विदेशी विधि द्वारा, हमारे न्यायालयों को डिक्री के संबंध में मान्यता दिए जाने की कसौटी के रूप में नहीं अपनाया गया है।

यद्यपि इस अर्थ में परस्परता विधि के बहुत से क्षेत्रों[2] में सुविदित है, किन्तु हमारा विचार है कि विवाह विच्छेद या विधिक पृथक्करण की डिक्रियों के संबंध में इस पर आग्रह नहीं किया जाना चाहिए। इस बात की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए कि प्राइवेट नागरिक असहाय व्यक्ति हैं और विदेशी प्राधिकारियों द्वारा अपनाए गए मार्ग पर आधारित, उनकी प्रास्थिति को प्रभावित करने वाले मामलों को मान्यता देने से अन्याय होगा।

वर्तमान संदर्भ में, मान्यता से संबंधित विधि का उद्देश्य उस लोकापवाद को रोकना है, जो उस समय उत्पन्न होता है जब किसी पुरुष और स्त्री को एक देश में पति और पत्नी अभिनिर्धारित किया जाता है और दूसरे में अपरिचित[3] व्यक्ति इस उद्देश्य का अत्यधिक उत्साह से पालन करने के प्रति अन्य आपत्तियां हो सकती हैं और विभिन्न रक्षोपायों और शर्तों को अधिरोपित करने की आवश्यकता हो सकती है, किन्तु परस्परता उनमें से नहीं है। हम समझते हैं कि सिद्धांततः दूसरे अर्थ में परस्परता पर आग्रह करने का कोई युक्तिसंगत औचित्य नहीं है। तथापि हम इस विषय पर प्रचलित विचारों की संक्षेप में चर्चा करेंगे।

संयुक्त राज्य अमरीका और जर्मनी में परस्परता।

12.8 संयुक्त राज्य अमरीका की स्थिति से प्रारंभ करना सुविधाजनक होगा क्योंकि इस सिद्धांत को वहां कुछ समर्थन मिला प्रतीत होता है। संयुक्त राज्य अमरीका में, यह सिद्धांत कि मान्यता देने से तब तक इंकार किया जाएगा जब तक कि अधिकारिता वाला न्यायालय, आवेदित न्यायालय द्वारा दिए गए समान निर्णय को मान्यता न दे, संयुक्त राज्य अमरीका को सुप्रीम कोर्ट द्वारा हिल्टन बनाम गेनट[4] में सुनाया गया था जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने अपना विनिश्चय "इस विस्तृत आधार पर दिया था कि अंतर्राष्ट्रीय विधि

---

1. प्रिल्स, रिकोगनिशन आफ फोरेन जजमेन्ट" (1972) 12 आई० जे० आई० एल० ए० में पृष्ठ 30, 31, 36 पर.
2. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44क.
3. विलसन बनाम विलसन ला रिपोर्टस 2 प्रोबेट 435, 442.
4. हिल्टन बनाम गेनेट, (1895) 159 यू० एस० 113, 228, 229, 234.

का आधार पारस्परिकता और परस्परता में होता है। किन्तु चार न्यायाधीशों ने यह कथन करते हुए विसम्मति प्रकट की थी कि पूर्व न्याय का सिद्धांत लोक नीति के इसी साधारण आधार पर लागू होना चाहिए कि मुकदमेबाजी का अंत होना चाहिए "और यह सरकार का काम है, न कि न्यायालयों का, यदि किन्हीं परिस्थितियों में वांछनीय या आवश्यक समझें तो प्रतिकरात्मक कार्यवाही के सिद्धांत को अपनाएं।

उस मामले में, निचले न्यायालय ने फ्रांस में संयुक्त राज्य अमरीका के एक नागरिक के विरुद्ध फ्रांस में पारित किए गए धन संबंधी निर्णय को प्रवर्तित किया था। बहुमत की राय से यह अभिनिर्धारित किया गया कि "हमारे राष्ट्रों का शिष्टाचार फ्रांस के न्यायालयों के निर्णयों को निश्चायक प्रभाव देने की अपेक्षा नहीं करता है" और ऐसा इस देश के और अन्य विदेशों के निर्णय को प्रभावशील किए जाने के बारे में फ्रांस की ओर से परस्परता के अभाव की दृष्टि से था।"

ऐसा प्रतीत होता है कि जर्मन विधि में यही नियम अधिकांश वर्गों के मामलों[1] में अपना या गया था।

संयुक्त राज्य अमरीका में आलोचना।

12.9 किन्तु (संयुक्त राज्य अमरीका और जर्मनी) दोनों देशों में इस नियम[2] की विस्तार सीमा के बारे में विद्वत् क्षेत्रों में पर्याप्त असहमति है।

संयुक्त राज्य अमरीका में विद्वान साधारणतया इस अपेक्षा का विरोध करते हैं क्योंकि (i) यह विदेशी सरकारों द्वारा ग्रहण की गई स्थितियों के लिए स्वच्छंद रूप से प्राइवेट व्यक्तियों को दण्डित करता है और क्योंकि (ii) ऐसे नियम का रचनात्मक प्रभाव, यदि कोई हो, बहुत थोड़ा पड़ता है और इसके बजाय इसकी प्रवृति, मान्यता की पद्धति[3] की साधारण अभिभूति के प्रति होती है।

संयुक्त राज्य अमरीका में कुछ राज्यों में यह सिद्धान्त नहीं अपनाया गया है।

12.10 बहरहाल यह सिद्धांत कई अमरीकी अधिकारिता वाले क्षेत्रों में, मुख्यतया न्यूयार्क[4], जार्जिया[5] और केलिफोर्निया[6] में नहीं अपनाया गया है। इसके अतिरिक्त, यह कथन करना महत्वपूर्ण है कि जहां इसे अपनाया भी गया है वहां इसे संबंधी निर्णयों में लागू नहीं किया गया है।

इंग्लैंड, फ्रांस में स्थिति।

12.11 यह भी उल्लेखनीय है कि —

(क) इंग्लैंड,[8] या

(ख) फ्रांस[9]

द्वारा विदेशी विवाह विच्छेदों की मान्यता के संबंध में कोई परस्परता संबंधी अपेक्षा अधिरोपित नहीं की गई है।

---

1. वोन मेहरेन और ट्रोटमेन की पुस्तक 'रिकोगनिशन आफ फोरेन डाइवोर्स" (1968) हार्वर्ड ला रिव्यू 1600, 1660, 1661.
2. देखिए: (क) रीज, "दि स्टेटस इन दिस कन्ट्री आफ जजमेन्ट्स रड़रड एब्रोड", (1950) स्तम्भ, एल० रिव्यू 783, 772 (नियम तभी लागू होता है जबकि अमरीकन पक्षकार विदेश में प्रतिवादी हो और मुकदमा हार जाए).
   (ख) नाडेलमेन, "नान रिकोगनिशन आफ अमरीकन मनी जजमेन्ट्स एब्रोड एण्ड वाट टू डू एबाउट इट" (1957) 42 इओवा लॉ रिव्यू 236, 249–55.
3. (क) अहरेनविग, कंफिलक्ट आफ लाज (1962) पृष्ठ 46, 166;
   (ख) नाड़लमेन "रेप्रिजल्स अगेन्स्ट अमेरीकन जजमेन्ट्स" (1952) 65 हार्वर्ड ला रिव्यू 1184, 1185–91;
   (ग) गुड़रिच कन्फिलक्ट आफ लाज, पृष्ठ 392.
4. (क) जोनस्टन बनाम कोम्पें ने जनरल ट्रान्सएलेण्टीक, (1926) 242 एन० वाई० पृष्ठ 331, 152, एम० एस० 121, जो वोन मेहरन और ट्रोटमेन द्वारा "रिकोगनिशन एक्सट्रा" (1968) 81 हार्वर्ड ला रिव्यू 1600, 1600, 1661 में उद्धृत किया गया है.
   (ख) कोवन्स बनाम टोकोनेदरोज पल्प एण्ड पेपर कम्पनी (1927) 219 एफ डिवीजन 120, 219 एन० वाई० सप्ली० 284 एफ० डी० 246 एन० वाई० 603, 159, एन० ई० 669.
5. (क) ट्रस्कोन स्टील कम्पनी लिमिटेड बनाम बीगली (1948) एम० ई० 2 डी० 623.
   (ख) गोलवोर्न बनाम जोसफ (1943), 195 गा, 723, 25 एस० ई० 2 डी० 576.
6. प्राइस की "रिकोगनिशन आफ फोरेन जजमेन्ट एक्सट्रा" (1972) 12 आई० जे० आई० एल० 30, 31 देखिए.
7. अहरेंजविग, कन्फिलक्ट आफ लाज (1962), पृष्ठ 165, पैरा 46 और पृष्ठ 163 पाद टिप्पण 25.
8. 1971 का इंग्लिश ऐक्ट
9. नाड़लमेन, "रिकोगनिशन आफ फोरेन मनी जजमेन्ट्स इन फ्रांस", (1956) 5 अमरीकन जरनल कम्पनी एल० 248, 251.

1971 के इंग्लैंड के ऐक्ट द्वारा इस विधि के कानून बनाये जाने के पूर्व भी, इण्डिका[1] वाले मामले में हाऊस ग्राफ लार्ड्स ने यह कहा था कि "परस्परता" के सिद्धांत की बजाय, "नीति को विचारणीय आधार इस बाबत सुसंगत थी।

12.12 इस विषय के सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि द्वितीय अर्थ में[2] परस्परता पर वर्तमान संदर्भ में बल नहीं दिया जाना चाहिए। तदनुसार, हम इस बाबत किसी निर्बंधन या विशेषक के बिना अपनी सिफारिशें कर रहे हैं और हमारी सिफारिशें लागू होनी चाहिए, चाहे विदेशी अधिकारिता संबंधी उन आधारों पर, जो हमारे द्वारा सिफारिश की गई विधि में प्रस्थापित आधारों के समान हैं, प्रदान की गई हमारी डिक्रियों को मान्यता दे या नहीं। निष्कर्ष।

1. इण्डिका बनाम इण्डिका (1967) आल ई० आर० पृष्ठ 689 पर.

2. ऊपर पैरा 12.2.

अध्याय 13

मान्यता के लिए विद्यमान आधारों के बारे में सिफारिश

प्रारम्भिक ।

13.1 अब हम कतिपय ऐसे विषयों की चर्चा करेंगे जिनका संबंध मान्यता के कतिपय विद्यमान आधारों या अन्य प्रकीर्ण विषयों से है, अर्थात् :—

(क) अधिवास के देश में मंजूर किया गया विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण ;

(ख) वह विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण जिसको अधिवास के देश में विधिमान्य माना गया है ;

(ग) तीसरे देश द्वारा विवाह-विच्छेद की अमान्यता का विवाह-विच्छेद के लिए वर्जन न होगा।

अधिवास के देश में मंजूर किया गया विवाह-विच्छेद ।

13.2 अधिवास के देश में मंजूर किए गए विवाह-विच्छेद को भारत में मान्यता दी जाती है, क्योंकि हम कामन ला नियमों का अनुसरण करते हैं। यह प्रश्न कि यह नियम विधिबद्ध किया जाना चाहिए या नहीं। विवरण का प्रश्न है किन्तु यह सिद्धांत ऊपर कथित रूप में है। यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय न्यायालय स्वयं अधिवास के सिद्धांत पर विवाह विषयक हेतुकों में अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते रहे हैं। इसके अतिरिक्त, हमारे कुछ कानूनी उपबंध इस धारणा पर भी आधारित हैं कि अधिवास के न्यायालय को यह अधिकारिता होती है। तदनुसार, यह उचित है कि हम वर्तमान स्थिति में बाधा न डालें।

अधिवास के देश में विधिमान्य रूप में मान्यता ।

13.3 जहां विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को, यद्यपि वह अधिवास के देश में मंजूर न किया गया हो, अधिवास के देश में विधिमान्य रूप में मान्यता दी जाती है, वहां यह कारण बन जाता है कि उसे भारत में भी मान्यता दी जानी चाहिएं। ऐसा उपबंध 1971[1] के इंग्लैंड के ऐक्ट में अंतर्विष्ट है और यहां भी इस विषय के लिए स्पष्ट उपबंध किया जाना चाहिए।

किसी अन्य अधिनियमिति के आधार पर मान्यता ।

13.4 इसके अतिरिक्त, यह भी आवश्यक है कि किसी अन्य अधिनियमिति के उन उपबंधों की व्यावृत्ति की जाएं, जो कि मान्यता[2] के लिए उपबंध करते हैं। अभी तक, जहां तक कि अभिनिश्चित किया जा सका है, भारतीय अधिनियमिति में विवाह-विच्छेद की डिक्रियों की मान्यता से संबंधित केवल एक भारतीय अधिनियमिति[3] है। किन्तु किसी अन्य अधिनियमिति के आधार पर मान्यता की बाबत उपबंध को साधारण ही होना चाहिए, ।

तीसरे देश द्वारा अमान्यता का विवाह-विच्छेद के लिए वर्जन न होना ।

13.5 अंत में, यह उपबंध करना उपयुक्त प्रतीत होता है कि तीसरे देश द्वारा विवाह-विच्छेद की अमान्यता, भारत में विवाह-विच्छेद की मान्यता के लिए वर्जन नहीं होगी। ऐसा उपबंध इंग्लैंड के ऐक्ट[4] में समाविष्ट है। ऐसे उपबंध की मुख्य उपयोगिता इस बात में है कि यह प्रस्थापित ऐक्ट के उपबंधों को, अन्य देशों की प्रवृत्तियों को दृष्टि में लाए बिना—विशेष रूप से उन देशों की, जोकि विवाह-विच्छेद को मान्यता देने के लिए अन्य कसौटियां अपनाते हैं—प्रवृत्त बनाता है।

1. 1971 के इंग्लिश ऐक्ट की धारा 6(क).
2. 1971 के इंग्लिश ऐक्ट की मुख्य धारा 6(ख).
3. युद्ध विवाहों से सम्बन्धित अधिनियमिति.
4. 1971 के इंग्लिश ऐक्ट की धारा 7 देखिए.

अध्याय 14

मान्यता के नए आधारों के बारे में सिफारिशें

I. प्रारम्भिक

14.1 विद्यमान विधि के बारे में कथन करने के पश्चात् अब हम यह चर्चा करेंगे कि इसमें क्या परिवर्तन किए जाने चाहिए। प्रथम बड़ा विषय, जिसके बारे में चर्चा करने की हम इस अध्याय में प्रस्थापना करते हैं, मान्यता के नए आधारों में परिवर्धन करने के सम्बन्ध में हैं। वर्तमान आधारों के बनाए रखे जाने के बारे में पहले ही चर्चा की जा चुकी है[1]। प्रारम्भिक।

14.2 प्रारम्भ में, यह प्रश्न स्वभावतः उठाया जा सकता है कि मान्यता का कोई अतिरिक्त आधार क्यों अन्तःस्थापित किया जाना चाहिए, और मान्यता के विद्यमान आधार, जो कि अधिकांशतया अधिवास की प्रमुख धारणा पर आधारित हैं, व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए पर्याप्त हैं या नहीं। इस प्रश्न के बारे में चर्चा करने के लिए यह आवश्यक है कि अधिवास की धारणा से परिणामित कतिपय दोषों के प्रति निर्देश किया जाए और इस विषय से सम्बन्धित कतिपय अन्य पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाए। विद्यमान आधारों में परिवर्धन करने की आवश्यकता—अधिवास की धारणाएं।

II. अधिवास—त्रुटियां

14.3 अब जहां तक अधिवास की धारणा का संबंध है, यदि पूर्णतया तथा विचार किया जाए तो, इसकी रूप रेखा सिद्धान्त रूप में स्पष्ट नहीं है। इसका व्यावहारिक उपयोजन कतिपय कठिनाईयां उत्पन्न करता है जिनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कठिनाई इस धारणा के उस भाग को अवधारण करने की है जोकि मानसिक तत्व का प्रतिनिधित्व करता है। मोटे तौर पर अधिवास में जैसा कि कामन ला जगत की पारस्परिक धारणाओं के अनुसार समझा गया है, दो तत्व हैं, जिन्हें सुविधापूर्वक भौतिक तत्व और मानसिक तत्व कहा जा सकता है। इस विषय पर निर्णयज विधि प्रचुर मात्रा में है किन्तु वर्तमान विश्लेषण के प्रयोजनों के लिए, लार्ड वेन्सलीडेल[2] द्वारा किए गए कथनों के प्रति निर्देश करना पर्याप्त है "अधिवास की ऐसी बहुत सी परिभाषाएं हैं, जो कि मुझे बहुत कुछ शुद्ध प्रतीत होती हैं। इसलिए इसकी बहुत अच्छी परिभाषा यह है—किसी स्थान में हमेशा रहने के आशय से वहां निवास, जब तक कि इस आशय में परिवर्तन करने वाली परिस्थितियां उत्पन्न न हो जाएं"। अधिवास की धारणा में दोष।

तथ्य और आशय का मिश्रण, जो कि अधिवास का गठन करने के लिए अपेक्षित है, न्या० रसेल के कथन में स्पष्ट रूप से उपदर्शित किया गया है :—

"अधिवास में तथ्य और आशय दोनों का मिश्रण होता है : निवास का तथ्य और असीमित समय के लिए रहने का आशय। अपेक्षित आशय ऐसा आशय नहीं है जो कि अधिवास के परिवर्तन के लिए विनिर्दिष्ट रूप से निदेशित है, किन्तु यह किसी देश में असीमित समय के लिए निवास करने का आशय है।"

14.4 अधिवास में भौतिक तत्व विमान समस्याएं न भी उपस्थित करे किन्तु मानसिक तत्व ऐसा करता है। यह अवधारण करना सरल हो सकता है कि कोई व्यक्ति उस समय, जब विवाह-विच्छेद के लिए कार्यवाहियां संस्थित की गई हैं, किसी विशिष्ट स्थान में निवास कर रहा है या नहीं किन्तु यह अवधारण करना उतना सरल नहीं है कि उस विशिष्ट क्षण में उसके क्या आशय हैं। किसी व्यक्ति का सदा ही इस बारे में अत्यंत निश्चित आशय नहीं हो सकता कि वह किस देश को अपना स्थायी गृह बनाना चाहता है। न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष उस व्यक्ति के प्रति अन्याय कर सकता है, जिसका ऐसा आशय न हो। मानसिक तत्व।

केवल मात्र यह तथ्य कि कोई व्यक्ति उस स्थान से, जिसमें वह पहले अधिवसित रहा है उद्भव का अधिवास भिन्न स्थान में निवास कर रहा है भले ही उसका वहां निवास दीर्घकालिक और सतत हो, आवश्यक

1. ऊपर अध्याय 13.
2. व्हिकर बनाम ह्यूम (1858) 7 हाउस आफ लार्ड्स केसेज 124, 164.
3. रि अन्नेसले, डेविड्सन बनाम अन्नेसले, (1926) अध्याय 692.

रूप से यह दर्शित नहीं करता कि उसने उस स्थान का अपने स्थायी गृह के रूप में चयन कर लिया है। इस लिए, विदेशी डिक्री की मान्यता के लिए कसौटी के रूप में अधिवास की धारणा प्रतिपादन में तो सरल है किन्तु लागू की जाने में कठिन है।

इंग्लैंड की धारणा की दुर्नम्यता।

14.5 अधिवास की धारणा से उद्भूत दूसरी कठिनाई यह तथ्य है कि यह एक दुर्नम्य धारणा है। आरनोल बनाम आरनोल्ड[1] में यह मत व्यक्ति किया गया था—

इंगलैण्ड में विवाहविच्छेद के सम्बन्ध में अधिकारिता का साधारण नियम यह है कि इसके लिए इंगलैण्ड का ही अधिवास एक कसौटी है और वह अधिवास पति का अधिवास होना चाहिए। अधिवास सम्बन्धी इंगलैण्ड की धारणा संसार में सबसे अधिक दुर्नम्य धारणा है। अधिवास उस स्थान में स्थायी रूप से बस जाने के आशय से निवास होना चाहिए।

उदाहरण के लिए, यह अधिवास की अमरीकी धारणा के अनुरूप नहीं है, जोकि, इस सन्दर्भ में कुछ हद तक अधिक उदार है। अधिवास की अरीमकी धारणा, यदि सिन्द्धात में नहीं तो व्यवहार में इंग्लैण्ड की धारणा से भिन्न है। इंगलैण्ड की धारणा व्यक्तिपरक तत्व पर जोर देती है जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में, अपेक्षित आशय की न्यायिक उद्घोषणाएं और अन्य प्रचलित सूत्र उन न्यायिक उद्घोषाणाओं और प्रचलित सूत्रों से बहुत भिन्न प्रतीत नहीं होते, जिनका इंगलैण्ड की विधि में उपयोग किया गया है, तथापि वास्तविक व्यवहार में अमरीकी न्यायालयों ने, व्यक्तिपरक कसौटी को साधारणतया उतने अक्षरशः नहीं लिया है जितने अक्षरशः ब्रिटेन के न्यायालयों ने लिया है।

पूर्व अधिवास के देश में भविष्य में वापस आने की यह निवास के वास्तविक स्थान से अन्यथा हटने की दूरस्थ संभावनाएं या अपेक्षाकृत प्रबल संभावनाएं, इंगलैण्ड के न्यायालयों द्वारा लागू किए गए मानदण्ड के कारण संभवतः चयन के अधिवास के अर्जित किए जाने से निवारित करेंगी। किन्तु अमरीकी न्यायालयों द्वारा उनकी साधारणतया उपेक्षा की गई है। ऐसा वहां भी किया गया है जहां नए अधिवास के अर्जन में, उद्भव के अधिवास का परित्याग भी अन्तर्वलित था।

इसके अतिरिक्त, कहा जाता है कि संयुक्त राज्य अमरीका में, अधिवास का परिवर्तन नए स्थान में अनिश्चित समय तक रहने के आशय पर इतना निर्भर नहीं करता है जितना कि वह अन्यत्र गृह स्थापित करने के किसी विद्यमान आशय के न होने पर निर्भर करता है।

उदाहरण के लिए अमरीकी ला इन्स्टीट्यूट द्वारा तैयार किए गए पुनर्कथन (रिस्टेटमेंट) में यह कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति कम से कम[2] फिलहाल के लिए किसी स्थान को अपना घर बनाने का आशय रखता है तो वही पर्याप्त है।

पत्नी का अधिवास।

14.6 कानूनी उपान्तरण से पृथकतः इंगलैण्ड की धारणा की एक दूसरी कमी यह है कि पत्नी का अधिवास तब तक साधारणतया पति के अधिवास के अनुसार ही होता है, जब तक कि विवाह अस्तित्वयुक्त रहता है। यह न केवल परिनिर्धारित ही है कि पत्नी अपने विवाह पर विधि की क्रिया द्वारा अपने पति का अधिवास अर्जित कर लेती है, जिसे कि वह उस समय तक बनाए रखती है जब तक कि विवाह अस्तित्वयुक्त[3-4] रहता है। किन्तु यह भी सुस्थापित है कि वह इस अधिवास को बनाए रखती है, भले ही उसके पति[5] द्वारा अभित्यजित कर दिया जाए और भले ही उसने न्यायिक पृथक्करण[6] की डिग्री भी अभिप्राप्त कर ली हो।

अधिवास की धारणा का यह पहलू स्वभावतः उस समय अन्याय को जन्म देता है, जब पति अपनी पत्नी का अभित्यजन कर देता है और इसके परिणामस्वरूप जब कि पत्नी का वास्तविक अधिवास पति के अधिवास से भिन्न हो जाता है, उसका पूर्व विद्यमान अधिवास, जोकि विवाह के कारण उद्भूत हुआ था, केवल उस विदेश के न्यायालयों को और केवल उन न्यायालयों को ही अधिकारिता प्रदान करता है जहां अभित्यजन के पूर्व पति अधिवसित था। जब तक कि विवाह समाप्त नहीं हो जाता, वहां यह स्थिति बनी रहती है जहां कि कामन ला लागू होता है।

1. आरनोल्ड बनाम आरनोल्ड (1957) 1 आल ई० आर० 570, 572.
2. रिस्टेटमेन्ट (कन्फिलक्ट आफ लाज), धारा 15(2)(ख), धारा 18.
3. अल्बर्टा बनाम कुक, (1926) ए० सी० 444 (पी० सी०).
4. यह सामान्य विधिनियम है.
5. येलबर्टन बनाम येलबर्टन (1859) 1 एस० डब्ल्यू० एण्ड टी० आर० 574.
6. गर्थबेट बनाम गर्थबेट (1964) 2 आल ई० आर० 233, 236 (अपील का न्यायालय) (लार्ड न्यायाधीश एल० विल्मर) में बहस देखिए.

14.7 जो कुछ ऊपर कहा गया है, उसका सार इस प्रकार दिया जा सकता है कि अधिवास की धारणा में निम्नलिखित मुख्य दोष हैं, अर्थात् :— अधिवास की कठिनाइयां—संक्षेप में।

(i) उपयोग[1] की कठिनाईयां;

(ii) अन्तर्वस्तु[2] की दुर्नम्यता; और

(iii) कतिपय परिस्थितियों में पत्नी[3] के प्रति अन्याय।

फिर भी हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि बहुत से देश अधिवास की कसौटी को, विवाह-विच्छेद में अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए, आधार के रूप में अपनाते हैं।

14.8 उन देशों के सम्बन्ध में, स्पष्टतः यह वांछनीय होगा कि उन देशों में पारित विवाह-विच्छेद या विधिक प्रथककरण की डिक्रियों को उस आधार पर मान्यता दी जाए। ऐसा उपबन्ध 1971 के इंगलैण्ड के ऐक्ट में भी अन्तर्विष्ट है और उसकी उपयोगिता, मान्यता के लिए प्रस्थापित नई कसौटियों के अन्तःस्थापन के पश्चात् भी, इस बात में निहित है कि भारतीय न्यायालयों से, मान्यता के प्रश्न पर विचार करते समय, अभ्यासतः निवास या राष्ट्रिकता से सम्बन्धित तथ्य के प्रश्नों की प्रस्थापित नई कसौटियों की परीक्षा करने और उनका अन्वेषण करने की अपेक्षा नहीं की जाएगी। अधिवास।

अतः हम सिफारिश करते हैं कि इस सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति को बनाए रखा जाना चाहिए।

14.8क किन्तु इस सम्बन्ध में अपनाई जाने वाली विधायी युक्ति उस युक्ति से थोड़ी सी भिन्न है जो कि इंगलैण्ड के ऐक्ट में अपनाई गई है। इंगलैण्ड के ऐक्ट के अन्तर्गत धारा 3(2) में अभ्यासतः निवास के अधीन अधिवास है। हम उसके बारे में पृथक्तः उल्लेख करना चाहेंगे और इस प्रकार, हम उस विषय के बारे में चर्चा के लिए अधिक सीधा मार्ग अपनाएंगे। विधायी युक्ति।

III. अभ्यासतः निवास

14.9 अधिवास की उन त्रुटियों को दृष्टि में रखते हुए, जिनके प्रति हमने निर्दिष्ट किया है, अन्य अतिरिक्त कसौटियों के ऊपर विचार करना भी वांछनीय है। मान्यता का प्रथम आधार जिसको कि जोड़ा जाना है, जिसके बारे में हमने आत्मसंबोधन किया है, अभ्यासतः निवास का है। यद्यपि निवास की धारणा इस क्षेत्र में कामन ला में विदित नहीं है, तो भी भारतीय विधान इससे सुपरिचित है। (1921 से प्रारम्भ होने वाले) कतिपय न्यायिक विनिश्चयों[4] द्वारा स्थिति में परिवर्तन किए जाने के पूर्व, निवास को भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 2 के अधीन, अधिकारिता के प्रयोग के लिए आधार के रूप में माना जाता था। यह विश्वास किया जाता है कि "अभ्यासतः निवास की धारणा" "अधिवास" को प्राविधिकर्त्ताओं से मुक्त कर देती है और निवास की अवधि पर ध्यान केन्द्रित करती है। विशिष्टतः, यह मानसिक तत्व के बारे में जांच की अपेक्षा नहीं रखती है। मान्यता के आधार के रूप में अभ्यासतः निवास का होना।

14.10 यह प्रश्न कि निवास आभ्यासिक है या नहीं, ऐसा प्रश्न है जो प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। "अभ्यासतः निवास" की परिभाषा इसके लिए आवश्यक नहीं होगी। निःसंदेह "अभ्यासतः निवास" अभिव्यक्ति का अभिप्राय आवश्यक रूप से सम्बन्धित देश में अन्तिम बार दाम्पतिक निवास नहीं है, यद्यपि बहुत से मामलों में दोनों साथ-साथ हो सकते हैं। "अभ्यासतः निवास" की परिभाषा का आवश्यक न होना।

14.11 एक अधिक कठिन प्रश्न, यद्यपि वह ब्यौरे का प्रश्न है—वहां उत्पन्न होता है जहां प्रत्यर्थी का अभ्यासतः निवास अर्जीदार के अभ्यासतः निवास से भिन्न है। इस सम्बन्ध में क्या कसौटी होनी चाहिए? प्रत्यर्थी का अभ्यासतः निवास कोई समस्या उत्पन्न नहीं करता, क्योंकि यदि देश ऐसा देश है जहां प्रत्यर्थी अभ्यासतः निवास कर रहा था तो उस देश के न्यायालय की डिक्री की मान्यता अधिकांश मामलों में प्रत्यर्थी के प्रति कोई अन्याय नहीं करेगी। किन्तु, वह स्थिति जहां केवल अर्जीदार विदेश में अभ्यासतः निवासी था, कठिन स्थिति है। कभी-कभी यह विश्वास किया जाता है कि अधिकारिता की ऐसी कसौटी—वह कसौटी जो अर्जीदार के निवास से संबंधित है—इस धारणा का समर्थन करती है जिसे 'स्थान चयन' कहा जाता है, अर्थात् जहां अर्जीदार एक स्थान से पति या पत्नी में से किसी एक का अभ्यासतः निवास।

---

1. ऊपर पैरा 14.5.
2. ऊपर पैरा 14.5.
3. ऊपर पैरा 14.6.
4. ऊपर केईज बनाम केईज देखिए.

दूसरे स्थान में भ्रमण करता रहता है और मुख्य रूप से अपने अनुकूल स्थान का चयन करने के लिए किसी देश में निवास करता है।

कन्वेंशन का आर्टिकल।

14.12 यह प्रतीत होता है कि प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि पर हेग सम्मेलन को भी यह स्वीकार करने की अनिच्छा थी कि अर्जीदार के अभ्यासतः निवास को अधिकारिता का आधार माना जाए, किन्तु स्कैंडिनेवियन देशों डेनमार्क, फिनलैंड और नार्वे–के प्रतिनिधियों ने अर्जीदार के अभ्यासतः निवास पर आधारित स्थान को सम्मिलित करने पर ज़ोर दिया अंततोगत्वा सम्मेलन ने इसे अधिकारिता के आधार के रूप में–यद्यपि कतिपय रक्षोपायों सहित–स्वीकार किया। संक्षेप में रक्षोपाय ये थे—अर्जीदार का कम से कम एक वर्ष का निवास, यह तथ्य कि पति और पत्नी ने उस देश में एक साथ अंतिम बार निवास किया था और यह तथ्य कि अर्जीदार भी उस राज्य का राष्ट्रिक था।

कन्वेंशन[1] का निश्चित उपबंध अत्यन्त व्यापक है। आर्टिकल 2 निम्न प्रकार है :–

"आर्टिकल 2

ऐसे विवाह-विच्छेदों और विधिक प्रथक्करणों को अन्य सभी संविदाकारी राज्यों में, इस कन्वेंशन के शेष निबन्धनों के अधीन रहते हुए, मान्यता दी जाएगी, यदि विवाह-विच्छेद या विधिक प्रथक्करण वाले राज्य में (जिसे इसमें इसके आगे उद्‌भव राज्य कहा गया है) कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को—

(1) प्रत्यर्थी का वहां आभ्यासिक निवास था; या

(2) अर्जीदार का वहां आभ्यासिक निवास था और निम्नलिखित अतिरिक्त शर्तों में से कोई पूरी होनी थी:–

(क) ऐसा आभ्यासिक निवास कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने के ठीक पूर्व कम से कम एक वर्ष तक लगातार रहा था;

(ख) पति और पत्नी ने वहां एक साथ अंतिम बार निवास किया था; या

(3) पति और पत्नी दोनों उस राज्य के राष्ट्रिक थे; या

(4) अर्जीदार उस राज्य का राष्ट्रिक था और निम्नलिखित अतिरिक्त शर्तों में से एक की पूर्ति होती थी :—

(क) अर्जीदार का वहां आभ्यासिक निवास था; या

(ख) उसने कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने के पूर्ववर्ती दो वर्षों के अन्तर्गत, कम से कम भागतः आने वाली एक वर्ष की लगातार अवधि तक, निवास किया था; या

(5) विवाह-विच्छेद के लिए अर्जीदार उस राज्य का राष्ट्रिक था और निम्नखिखित दोनों अतिरिक्त शर्तें पूरी होती थीं;

(क) अर्जीदार कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को उस राज्य में उपस्थित था; और

(ख) पति और पत्नी ने, उस राज्य में, जिसकी विधि में, कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को, विवाह-विच्छेद के लिए उपबन्ध नहीं किया गया था, एक साथ अभ्यासतः अंतिम बार निवास किया था।"

हम "पति या पत्नी में से किसी" के प्रश्न पर बाद में विचार करेंगे।

राष्ट्रिकता

राजनिष्ठा के कर्त्तव्य को न्यायोचित ठहराने वाली वास्तविक सम्बन्ध द्वारा गठित राष्ट्रिकता।

14.13 अब हम राष्ट्रिकता की कसौटी पर विचार करेंगे। साधारणतया किसी व्यक्ति की राष्ट्रिकता यदि राज्य और व्यक्ति[2] के बीच वास्तविक कड़ी हो तो उसी राज्य की होती है, जो कि उसे राष्ट्रिकता प्रदान करता है।

1. हेग अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन का आर्टिकल 2.
2. अमेरिकन ला इन्स्टीट्यूट, रीस्टेटमेन्ट आफ फारेन रिलेशन्स ला, सेकिण्ड (1905), पृष्ठ 74, पैरा 26.

वास्तविक कड़ी की अपेक्षा, नोटेबोम वाले मामले[1] में इन्टरनेशनल कोर्ट आफ जस्टिस के विनिश्चय का तर्कसंगत परिणाम है। वास्तविक संबंध की विद्यमानता का प्रश्न वहां समस्याएं प्रस्तुत कर सकता है जहां कोई विशिष्ट देश ऐसे व्यक्ति को, उस व्यक्ति की सहमति के बिना, राष्ट्रिकता प्रदान करने का प्रयास करता है, जो उसकी सीमाओं के भीतर निवासी न हो। यह भी हो सकता है कि एक से अधिक राज्य यह अवधारण करें कि कोई व्यक्ति उनका राष्ट्रिक है। वर्तमान प्रयोजन के लिए राष्ट्रिकता के बारे में ब्यौरेवार विचार करना आवश्यक नहीं है, किन्तु यह बताना प्रसंगोचित है कि राष्ट्रिकता की धारणा ऐसी धारणा है जिसका विकास यह अवधारण करने के लिए साधारणतया किया गया है कि कोई व्यक्ति संबंधित[2] देश के प्रति स्थायी राजनिष्ठा रखता है या नहीं।

14.14 विवाह-विच्छेदों को मान्यता दी जाने के बारे में राष्ट्रिकता की कसौटी की वांछनीयता की परीक्षा करते हुए, हम यह कहेंगे कि इस विषय पर दो दृष्टिकोण संभव हैं। बहुत से सिविल विधि वाले देश इसे विवाह विषयक हेतुकों में अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए मूल आधार मानते हैं और इस कसौटी को मान्यता न देना संभवतया प्रत्येक मामले में इनकी विधियों को अमान्य ठहराने के बराबर होगा। किन्तु साथ ही, यह बताया जाना भी उचित होगा कि राष्ट्रिकता, स्वयं, प्रत्यक्ष रूप से ऐसे घनिष्ठ संबंध के प्रति संकेत नहीं करती है, जो व्यक्ति और देश के बीच वर्तमान प्रयोजन के लिए महत्वपूर्ण हो। *राष्ट्रिकता की कसौटी को मान्यता देने की वांछनीयता के बारे में उपयोग।*

14.15 अतः वहां अन्याय हो सकता है जहां किसी व्यक्ति ने, उन कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने के पूर्व, जिनमें डिक्री अभिप्राप्त की गई थी, राष्ट्रिकता के देश को परित्यक्त कर दिया था। इन पहलुओं को मान्यता देते हुए, हेग[3] कन्वेन्शन कतिपय अन्य ऐसे रक्षोपायों की अपेक्षा करता है जिनका वहां अनुपालन किया जाता होगा, जहां कि राष्ट्रिकता के आधार पर मान्यता दी जानी हो। *मान्यता का दूसरा आधार राष्ट्रिकता है।*

14.16 राष्ट्रिकता का राजनैतिक पहलू भी है और उसमें बहुत सी पद्धतियां अन्तर्वलित हो सकती हैं, जैसे जन्म-स्थान, शासक के प्रति औपचारिक राजनिष्ठा, मूलवंश या पूर्वज परंपरा और बहुत से अन्य तथ्य, जो आवश्यक रूप से अधिवास से संबंधित नहीं हैं। जैसा कि लेफलार ने बताया[4] है, "किसी एक देश के नागरिक के लिए किसी दूसरे देश में अधिवसित होना पूर्णतया संभव है"। *राष्ट्रिकता की धारणा।*

14.17 राष्ट्रिकता और अधिवास के बीच का अन्तर अवलोकनीय है। रोमन युग में (राष्ट्रिकता और अधिवास) दोनों धारणाएं स्पष्ट रूप से पृथक् नहीं थीं। किसी व्यक्ति का किसी समुदाय की विधियों से सम्बन्ध :— *अधिवास और राष्ट्रिकता।*

(1) उसके देशीय गृह की दृष्टि से, जोकि उस समुदाय के भीतर अवस्थित होना था, या

(2) राजनीतिक बंधनों की दृष्टि से, जोकि उसे समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ समानरूप से बांधते थे,

माना जा सकता था।

14.18 रोमनों ने अधिवास को इस अर्थ में एकात्मक नहीं माना कि कोई व्यक्ति किसी समय-विशेष पर केवल एक अधिकारिता में अधिवसित हो सकता था। इस विचार का प्रवेश बाद में हुआ था। संघवाद[5] का विकास एक ऐसे महत्वपूर्ण तथ्य से हुआ जो कि कतिपय देशों के लिए राष्ट्रिकता से स्वीय विधि प्राप्त करने का और अन्य देशों के लिए अधिवास से राष्ट्रिकता की विधि प्राप्त करने का कारण बना। *रोमन विधि।*

14.19. राष्ट्रिकता की कसौटी पर अब भारतीय संदर्भ में विचार किया जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि मान्यता के लिए भारतीय न्यायालयों के समक्ष आने वाले अधिकांश मामले, प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः, ऐसे भारतीयों के होंगे जो भारत वापस लौटने के पूर्व, विदेशों में, जैसे यूनाइटेड किंगडम में, दूरवर्ती पूर्वीय देशों *राष्ट्रिकता की कसौटी जिस पर भारतीय न्यायालयों द्वारा मान्यता के सन्दर्भ में विचार-विमर्श किया गया है।*

---

1. नोटेबोम केस, 1 सी० जे० रिपोर्ट 4; 49 अमेरिकन जरनल आफ इन्टरनेशनल ला, 396.
2. यू० एस० ए० इम्मीग्रेशन एण्ड नेशनलटी ऐक्ट, 1952 सेक्शन 1101(ए)(22), (1958) 8 युनाइटिड स्टेट्स कोड, सेक्शन 1101(क)(22) देखिए।
3. आर्टिकल 2, ऊपर पैरा 14.12।
4. कन्फ्लिक्ट आफ लाज (1960), पृष्ठ 31, पैरा 16 देखिए।
5. कुक की पुस्तक "दि लोजिकल एण्ड लीगल बेसिज आफ दि कन्फ्लिक्ट आफ लाज" (1942) का अध्याय 8 देखिए।

में, संयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा में, निवास कर रहे थे। ऐसे मामलों में राष्ट्रिकता की कसौटी भले ही विदेशी विवाह-विच्छेद को मान्यता के लिए आधार के रूप में सम्मिलित कर ली जाए, वह सैद्धान्तिक मात्र होगी। ऐसे अधिकांश मामलों में पक्षकारों की राष्ट्रिकता भारतीय होगी और राष्ट्रिकता की कसौटी विदेशी न्यायालयों की सक्षमता में और कोई परिवृद्धि नहीं करेगी।

किन्तु कुछ मामलों में, जहाँ पक्षकार भारतीय राष्ट्रिक नहीं हैं या कम से कम एक पक्षकार भारतीय राष्ट्रिक नहीं है, वहां विदेशी न्यायालय की अधिकारिता को मान्यता देने के संबंध में राष्ट्रिकता की कसौटी को स्वीकार या अस्वीकार किया जाना तात्विक हो सकता है। यदि विदेश ने राष्ट्रिकता के आधार पर अधिकारिता का प्रयोग किया है और पक्षकार, यद्यपि भारतीय मूल के हैं, किन्तु उसके राष्ट्रिक हैं तो ऐसी डिक्री विदेशी न्यायालय द्वारा पारित की जा सकती है। ऐसे मामलों में डिक्री की मान्यता की उपयोगिता स्पष्ट है।

राष्ट्रिकता के आधार पर मान्यता देने के पक्ष में बातें—ईसाइयों की बाबत स्थिति।

14.20 राष्ट्रिकता की कसौटी को अपनाने के लिए और उसकी सिफारिश करने के लिए एक और भी तर्क लें, अर्थात् यह कि इस कसौटी को बहुत से सिविल विधि वाले देशों द्वारा विवाह विषयक अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए लागू किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि इस कसौटी को हमारी विधि में उन देशों द्वारा प्रदान की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री को मान्यता देने के लिए स्वीकार और सम्मिलित नहीं किया जाता है तो उन देशों के द्वारा मंजूर किए गए विवाह-विच्छेद भारत में विधिमान्य नहीं होंगे। इस पर पक्षकारों को पुनः भारत में विघटन के लिए कार्यवाहियां संस्थित करनी होंगी। यह उपधारणा करते हुए कि यह स्थिति बहुधा व्यवहार में उत्पन्न नहीं होगी, क्योंकि ऐसे बहुत कम गैर भारतीय[1] होंगे, जिनका विवाह-विदेशी न्यायालय द्वारा विघटित कर दिए जाने पर वे भारतीय न्यायालयों में मुकदमें लाएंगे, यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है तो इसमें व्यवहारिक असुविधा होगी, क्योंकि विवाह-विच्छेद के प्रश्न पर पुनः मुकद्दमा किया जाना होगा।

व्यवहारिक असुविधा के इस पहलू के अतिरिक्त, सैद्धान्तिक पहलू भी है जिसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती अर्थात् पक्षकार, जब तक कि वे भारत में अधिवसित न हों, वे भारतीय न्यायालयों की अधिकारिता का आह्वान करने में समर्थ नहीं होंगे कम से कम तब जब कि वे ईसाई हों। ऐसा इस कारण से है कि भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन, जोकि ईसाइयों के लिए मुख्य अधिनियमिति है, विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में अधिकारिता[2] का प्रयोग अनन्य रूप से अधिवास के आधार पर किया जाता है। यदि यह ठीक स्थिति है तो इसका अभिप्राय यह है कि अनधिवसित ईसाइयों के पास न तो आधार के लिए विदेशी डिक्री—यदि उसे मान्यता नहीं दी जाती है, रह जाएगी और न ही विवाह-विच्छेद का आधार (चाहे वह कोई भी आधार हो) स्थापित करने और समुचित विवाह विषयक अनुतोष प्राप्त करने के लिए हमारे न्यायालयों की सहायता पाने हेतु प्रयास कर सकेंगे। यद्यपि वे भारत में पुनः कार्यवाहियाँ संस्थित करने की असुविधा उठाने के लिए तैयार होंगे, किन्तु भारतीय विवाह-विच्छेद की स्कीम, यदि ईसाई हैं तो, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, उनके मार्ग में बाधा डालेगी।

उस स्थिति की कठिनाई जहां पक्षकार हिन्दू है।

14.21 उपर्युक्त स्थिति[3] में जहां पक्षकार हिन्दू हैं, यद्यपि वे भारतीय राष्ट्रिक नहीं है, समान कठिनाई उत्पन्न हो सकती है क्योंकि न्यायालयों की अधिकारिता से संबंधित हिन्दू विवाह अधिनियम का उपबन्ध[4] अस्पष्ट है।

यह संदेहातीत रूप से स्पष्ट नहीं है कि यह उपबन्ध आन्तरिक न्यायालय अर्थात् विशेष भारतीय न्यायालय के बारे में ही, जिसे अधिकारिता प्रयोग करना चाहिए, अधिकथित करने के लिए आशयित है या यह उपबन्ध साधारणतया प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रति निर्देश से भारतीय न्यायालयों की अधिकारिता के अधिक विस्तृत प्रश्न पर विचार करने के लिए आशयित है।

राष्ट्रिकता की कसौटी की सिफारिश की जाती है।

14.22 उन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए जोकि, यदि राष्ट्रिकता के न्यायालय की डिक्रियों को मान्यता नहीं दी जाती है तो परिणामस्वरूप सामने आएंगी, हम यह दृष्टिकोण अपनाने के लिए तैयार हैं कि ऐसी मान्यता दी जानी चाहिए कि यदि यह सिद्धांत स्वीकार किया जाता है तो दूसरा प्रश्न, जिस पर विचार किया

1. ऊपर पैरा 14.19.
2. भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 2 के बारे में विचार विमर्श, ऊपर अध्याय 6.
3. ऊपर पैरा 14.19 और 14.20.
4. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 19 (ऊपर अध्याय 5 देखिए)

जाना होगा, ब्यौरे का प्रश्न है अर्थात् क्या राष्ट्रिकता के सिद्धांत को ऐसी और अपेक्षाएं पूरी करनी चाहिए जो हेग कन्वेंशन[1-2] के आर्टिकल 2 द्वारा ध्यान में रखी गई हैं या केवल राष्ट्रिकता का होना पर्याप्त होना चाहिए। किसी भी मामले में ब्यौरे के दूसरे प्रश्न पर भी विचार किए जाने की आवश्यकता होगी अर्थात् इस पर कि दोनों पक्षकारों की राष्ट्रिकता की परख की जानी चाहिए या नहीं या एक पक्षकार की राष्ट्रिकता पर्याप्त होनी चाहिए। हम समझते हैं कि सादा कसौटी पर्याप्त है।

14.23 हमने देखा है कि इंगलैंड में यह कसौटी बिना किसी और प्रतिबन्ध[3] के अपनाई गई है। दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशन[4] में यह कसौटी कतिपय निर्बन्धनात्मक उपबंधों के साथ सम्मिलित की गई है। हमारे विचार में, पूर्ववर्ती कसौटी अधिमानीय है, क्योंकि यह लागू की जाने में सरल है और उसमें कोई न्यायिक विफलता नहीं है।

14.24 इस प्रश्न पर कि राष्ट्रिकता की कसौटी को उन विभिन्न प्रतिबन्धों से, जोकि अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशन[5] के अनुच्छेद 2 में बताई गई हैं, भारग्रस्त किया जाना चाहिए या नहीं, हम अपने विचार[6] को पुनः व्यक्त करते हैं कि उसे दो कारणों से इस प्रकार भारग्रस्त नहीं किया जाना चाहिए। प्रथमतः ऐसे निर्बन्धनों को कतिपय सिविल विधि देशों द्वारा मान्यता नहीं दी जाती है और दूसरे ऐसे निर्बन्धन मान्यता के उपबंधों की व्यवहारिक उपयोगिता कम कर सकते हैं। व्यवहारतः इस कसौटी का भारतीय मूल के व्यक्तियों के संबंध में बहुधा उपयोग किए जाने की संभावना नहीं है। उसका उपयोग बहुधा विदेशी मूल के व्यक्तियों के संबंध में किया जाएगा ऐसे मामले बहुत होने की संभावना नहीं है। — अन्य तर्क सम्मिलित किए जाने चाहिएं या नहीं।

IV. दोनों पक्षकारों को कसौटी पूरी करनी चाहिए या नहीं

14.25 अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि यदि अधिकारिता संबंधी अपेक्षा पति और पत्नी में से किसी एक के संबंध में पूरी कर दी जाती है तो इतना पर्याप्त है या नहीं, या उस अपेक्षा को पति और पत्नी दोनों की बाबत पूरा किया जाना चाहिए। इस पहलू ने हमारे लिए कुछ उत्सुकता उत्पन्न कर दी है और इस ने हमारा पर्याप्त ध्यान आकर्षित किया है, क्योंकि कोई भी विनिश्चय, जो हम करते हैं, पक्षकारों पर महत्व पूर्ण प्रभाव डालेगा। — किसी भी पक्षकार के आभ्यासिक निवास आदि की कसौटी को अपनाया जाना है या नहीं।

14.26 प्रारंभ में, इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह विनिश्चय करना सदैव एक कठिन प्रश्न रहा है कि मान्यता के लिए किसी विशेष आधार को व्यापक रूप में अपनाया जाना चाहिए या संकीर्ण रूप में विवाह-विच्छेद मात्र को मान्यता देने की वांछनीयता के मुकाबिले जहां कि पक्षकार का उनके अपने देश से वास्तविक सामाजिक सम्बन्ध है, ऐसी स्थितियों से बचाव किए जाने की आवश्यकता को अवश्य समझा जाना चाहिए जहां कि पक्षकार को एक देश में विवाहित और दूसरे[7] देश में अविवाहित माना जाता है किन्तु कठिनाई इस व्यापक सिद्धांत को लागू करने में है। किन मामलों में हम, गंभीर विरोधों के भय के बिना इस पर बल दे सकते हैं कि उनमें वास्तविक सामाजिक संबंध है। इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है और इसमें विभिन्न दृष्टिकोण के लिए स्थान है, जैसा कि कन्वेंशन में अपनाए गए मार्ग के विरुद्ध इंगलैण्ड के ऐक्ट में अपनाए गए मार्ग द्वारा सोदाहरण बताया गया है। — मान्यता के आधार का विनिश्चय करने की कठिनाई।

इंगलैण्ड के ऐक्ट के अधीन यदि पति और पत्नी में से कोई (अर्थात् एक पक्षकार) विहित[8] कसौटी को पूरा कर देता है तो यही पर्याप्त है। हम इस उपबन्ध के बारे में पहले ही बता चुके हैं।

---

1. ऊपर पैरा 14.21.
2. आर्टिकल 2.
3. इंग्लिश ऐक्ट, 1971 की धारा 3(1)(ख).
4. कन्वेंशन का आर्टिकल 2.
5. आर्टिकल 2, ऊपर पैरा 14.2.
6. ऊपर पैरा 14.23.
7. रिपोर्ट आफ दि रायल कमिशन आन मेरिज एण्ड डाइवोर्स (1956), कमाण्ड पेपर नं० 9678, पृष्ठ 12 और 13.
8. धारा 3(1)(क)(ख) और धारा 3(2) ऐक्ट, 1971, ऊपर पैरा 10.3.

हेग कन्वेंशन का आर्टिकल 2

14.27 इस संबंध में हेग कन्वेंशन[1] अधिक निर्बन्धनात्मक है, और जहां दोनों पक्षकार अधिकारिता संबंधी कसौटी को पूरा नहीं करते हैं, वहां वह पूरी किए जाने के लिए बहुत सी शर्तें अधिकथित करता है। उस कन्वेन्शन[2] का आर्टिकल 2 प्रत्यर्थी और अर्जीदार के बीच विभाजन करता है। विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के राज्य के क्षेत्र के भीतर प्रत्यर्थी का अभ्यासतः निवास, स्वयं आर्टिकल 2(1) के अधीन अधिकारिता का पर्याप्त आधार है। संभवतः यह प्रत्यर्थी की दृष्टि में अत्यधिक सुविधाजनक न्यायालय होगा और इसीलिए इसे, थोड़े विचार-विमर्श के पश्चात् कन्वेंशन में स्वीकार कर लिया गया था। किन्तु अर्जीदार के अभ्यासतः निवास को अधिकारिता के आधार के रूप में स्वीकार किए जाने में अधिक संकोच था। कुछ प्रतिनिधियों की आशंका थी कि अधिकारिता का ऐसा शीर्ष स्थान चयन का समर्थन कर सकता है। किन्तु स्केन्डिनेविया के देश के प्रतिनिधियों ने (मान लीजिए कि इटली के पति द्वारा अभित्यजित स्केन्डिनेविया की स्त्री के मामले को ध्यान में रखते हुए) अर्जीदार के अभ्यासतः निवास पर आधारित स्थान को अभिलिखित करने पर जोर दिया—प्रत्यक्षतः ऐसा स्केन्डिनेविया के देश में अभित्यजित स्केन्डनेविया की स्त्रियों को मंजूर किए गए विवाह-विच्छेदों की मान्यता दिलाने के लिए किया गया था। परिणामस्वरूप सम्मेलन में, किसी राज्य में अर्जीदार के अभ्यासतः निवास की मान्यता के आधार के रूप में स्वीकार कर लिया गया किन्तु केवल तब जब वह ऐसे "सुरक्षा" तत्वों के साथ हो, जैसे अर्जीदार के निवास की अवधि, यह तथ्य कि पति-पत्नी ने उस राज्य में अन्तिम बार अभ्यासतः एक साथ निवास किया था और यह तथ्य कि अर्जीदार भी उस राज्य का राष्ट्रिक था।

1967 में, बेलजियम के प्रतिनिधि द्वारा यह तर्क दिया गया था कि यह तथ्य कि पति-पत्नी का किसी राज्य में अंतिम बार दाम्पत्तिक निवास रहा था, स्वयं ही विवाह-विच्छेद और पृथक्करण के मामलों में उस राज्य की सक्षमता का तथ्य होना चाहिए, किन्तु यह सुझाव अंततोगत्वा अस्वीकृत कर दिया गया था।

राष्ट्रिकता का प्रश्न।

14.28 राष्ट्रिकता को अधिकारिता के आधार के रूप में स्वीकार किए जाने के बारे में, कन्वेंशन के पहले किए गए वाद विवादों में भी कुछ कठिनाई उत्पन्न हुई थी। चूंकि राष्ट्रिकता अधिकांश सिविल विधि वाले देशों में अधिकारिता का मूल आधार है, अतः उसको साधारणतः लागू करने में कोई आपत्ति नहीं थी। किन्तु कतिपय प्रतिनिधियों द्वारा यह तर्क दिया गया था कि राष्ट्रिकता का राजिनैतिक बन्धन सदा ही, किसी व्यक्ति और राज्य के बीच पर्याप्त रूप से इतना घनिष्ट संबंध दर्शित नहीं करता है कि जिससे किसी व्यक्ति के संबंध में, विवाह-विच्छेद की अधिकारिता की बाबत उस राज्य की उपधारणा को न्यायोचित ठहराया जा सके। उदाहरण के लिए, यह किसी व्यक्ति पर उसकी इच्छा के विरुद्ध, किसी राज्य की उन विधियों को लागू कर सकता है जिन्हें कि उसने बहुत पहले छोड़ दिया था। यह तर्क इस हद तक स्वीकार किया गया था कि कन्वेंशन के अधीन प्रत्यर्थी की मात्र राष्ट्रिकता को अपने आप में कभी भी अधिकारिता[3] के विषय के रूप में मान्यता नहीं दी गई है। अर्जीदार की राष्ट्रिकता केवल वहीं पर्याप्त होती है जहां वह निम्नलिखित "सुरक्षात्मक" तत्वों के साथ हो, जैसे (1) अर्जीदार का उसके अपने राष्ट्रीय राज्य के भीतर आभ्यासिक निवास, (2) उसका वहां कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने के पूर्ववर्ती दो वर्षों के भीतर एक वर्ष की लगातार अवधि के लिए, कम से कम भागतः आभ्यासिक निवास और (3) प्रत्यर्थी के पास विवाह-विच्छेद वाले राज्य की राष्ट्रिकता हो।

कन्वेशन राष्ट्रिकता के सिद्धांत में एक दूसरी रियायत भी करता है। अनुच्छेद 2(5) इस बात की मान्यता देता है कि कोई अर्जीदार अपनी राष्ट्रिकता देश में विवाह-विच्छेद के उपचार की मांग कर सकता है, यदि (क) वह कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को वहां उपस्थित था, और (ख) पति-पत्नी ने उस राज्य में, जिसकी विधि कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को विवाह-विच्छेद के लिए उपबंध नहीं करती थी, अंतिम बार अभ्यासतः एक साथ निवास किया था।

यह उपबंध ऐसे मामले के संबंध में कार्यवाही करने के लिए परिकल्पित है जिसमें, उदाहरण के लिए, स्विटजरलैण्ड की राष्ट्रिकता वाली कोई लड़की, जो इटली के किसी व्यक्ति से विवाहित है, वहां आवश्यक आभ्यासिक निवास किए बिना या उसका पुनरारम्भ किए बिना स्विटजरलैण्ड में विवाह-विच्छेद अभिप्राप्त करने की

1. हेग कन्वेशन का आर्टिकल 2।

2. ऊपर पैरा 9.3।

3. इसका सम्मिलित किया जाना, आस्ट्रिया, बेल्जियम, जर्मनी, ग्रीस और युगोस्लाविया के प्रतिनिधियों द्वारा बल दिए जाने पर भी, अधिकांश राज्यों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

इच्छा करती है। यद्यपि यह उपबंध स्पष्ट रूप से धनी व्यक्तियों के लिए "हवाई टिकट विवाह-विच्छेद" जैसे विवाह-विच्छेद के लिए मार्ग खोलता है किन्तु इटली और आयरलैण्ड के प्रतिनिधियों ने इसके पक्ष में मत दिया।

हमारा दृष्टिकोण।

14.29 कन्वेंशन की बाबत इतना ही बताना पर्याप्त है। अब वह प्रश्न, जिस पर कि विचार किया जाना है, यह है कि हमारा दृष्टिकोण क्या होना चाहिए। क्या हमें—(i) इंग्लैण्ड का ऐक्ट, (ii) कन्वेंशन या (iii) कोई अन्य मार्ग अपनाना चाहिए? इंग्लैण्ड के ऐक्ट[1] को अपनाने का अभिप्राय यह होगा कि अधिकारिता संबंधी कसौटी के केवल एक पक्षकार के संबंध में पूरा किए जाने की आवश्यकता होगी। कन्वेंशन[2] को अपनाने का अभिप्राय यह होगा कि (i) दोनों पक्षकारों को कसौटी पूरी करनी होगी, या (ii) यदि केवल एक पक्षकार कसौटी को पूरा करता है तो कतिपय अन्य अपेक्षाओं को पूरा किया जाना होगा।

ऐसी भारतीय स्त्री से सुसंगत विशेष सामाजिक तथ्य जिसके पति का निवास विदेश में है।

14.30 इस विषय पर सिफारिश करते हुए, हम इस सामाजिक तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते कि बहुत सी भारतीय स्त्रियां भारत में ऐसे भारतीय युवकों से विवाह कर लेती हैं जो विवाह के पश्चात् शीघ्र ही, उस विदेश में वापस लौट जाते हैं जहां उन्होंने पहले ही अपना निवास बनाया हुआ है और पत्नी पीछे रह जाती है। उस परिस्थिति में भारतीय पति विदेश के अपने आभ्यासिक निवास के आधार पर वहां विवाह-विच्छेद प्राप्त कर सकता है और उस स्थिति में ही सकता है कि पत्नी ने विदेश की यात्रा भी न की हो या वह वहां लम्बी अवधि के लिए रही भी न हो।

यदि ऐसी काल्पनिक स्थिति में विदेश में कोई न्यायालय विवाह-विच्छेद मंजूर कर देता है और विवाह-विच्छेद को भारत में मान्यता दे दी जाती है तो पत्नी के प्रति अन्याय होगा, क्योंकि उपरोक्त काल्पनिक स्थिति में परिकल्पित तथ्यों पर पत्नी के बारे में ऐसी कोई उपधारणा नहीं की जा सकती कि उसने विदेश को अपने विधिक गृह के रूप में स्वीकार कर लिया है।

निःसंदेह यही तर्क वहां लागू होता है जहां पति विदेश में पत्नी को छोड़ कर भारत वापस आ जाता है और पत्नी उस देश में विवाह-विच्छेद अभिप्राप्त कर लेती है। किन्तु इस स्थिति की उतनी प्राथिकता होने की सम्भावना नहीं है जितनी संभावना कि उपरोक्त वर्णित स्थिति की है।

दोनों पक्षकारों के आभ्यासिक निवास आदि के बारे में सिफारिश।

14.31 उस बात का ध्यान रखते हुए जो हम ने ऊपर कही है, हम ध्यानपूर्वक विचार करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारतीय विधि द्वारा विदेशी विवाह-विच्छेद को मान्यता प्रदान की जाने की दृष्टि से प्रस्थापित विधि में यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि दोनों पक्षकारों को अधिकारिता सम्बन्धी कसौटियों को पूरा करना चाहिए। इस निष्कर्ष पर पहुंचते हुए हम मुख्य रूप से इस तथ्य से प्रभावित हुए हैं कि यदि मान्यता अधिवास, आभ्यासिक निवास या एक पक्षकार की राष्ट्रिकता के आधार पर प्रदान की जाती है तो बहुधा स्त्रियों के प्रति, पहले ही वर्णित[3] विशेष परिस्थितियों में, अन्याय हो जाएगा।

इंग्लैण्ड के ऐक्ट या हेग कन्वेंशन में पुनरीक्षण का समर्थन न किया जाना।

14.32 हमने ऊपर जो कुछ कहा है, उसका परिणाम यह निकलता है कि हम इंग्लैण्ड के ऐक्ट[4] के उपबंध को भारत के लिए समुचित नहीं समझते हैं हम यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि हम हेग कन्वेंशन[5] के आर्टिकल 2 में अपनाए गए समाधान सूत्र को अपनाने के लिए इच्छुक नहीं हैं। ऐसा सूत्र एक भार साबित हो सकता है। वह आर्टिकल प्राक्तन सरलता का प्रतिरूप नहीं है। इसके अतिरिक्त, हम इस बारे में भी निश्चित नहीं है कि उस आर्टिकल में दिया गया सूत्र व्यवहार में सरलता से करणीय होगा, क्योंकि उस पर ऐसे बहुत से निर्बन्धन हैं जो कि मान्यता देने वाले न्यायालय से, बहुत सी कसौटियों की बाबत अपना समाधान करने की अपेक्षा कर सकते हैं।

उस सिफारिश का प्रभाव, जिस पर विचार किया गया है।

14.33 अतः हम अधिक कड़े दृष्टिकोण[6] को अधिमान देंगे, अर्थात् दोनों पक्षकारों को अधिकारिता संबंधी कसौटी को पूरा करना चाहिए। निसंदेह, ऐसा दृष्टिकोण अपनाने में कतिपय उलझनें हैं, क्योंकि यह दृष्टिकोण मान्यता के लिए संकीर्ण विस्तार क्षेत्र अधिकथित करता है। यदि पति 'क' देश में अभ्यासतः निवासी है और उसकी पत्नी 'ख' देश में अभ्यासतः निवासी है तो किसी भी देश में अभिप्राप्त किए गए विवाह-विच्छेद

1. ऊपर पैरा 14.26.
2. ऊपर पैरा 14.28.
3. ऊपर पैरा 14.30.
4. ऊपर पैरा 14.26.
5. ऊपर पैरा 14.28.
6. ऊपर पैरा 14.31 और 14.32.

को भारत में मान्यता नहीं दी जाएगी । यह सिद्धांत उन मामलों को भी लागू होता है जिनमें पक्षकार विभिन्न देशों में अधिवसित हैं या उनके राष्ट्रिक विभिन्न देशों में अधिवसित हैं या उनके राष्ट्रिक हैं ।

14.34 जो भी हो, भारतीय प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन अभी तक यही स्थिति है जो कि, इंग्लैण्ड के नियमों का पालन करते हुए, विवाह-विच्छेद को मान्यता दिए जाने के पूर्व, विदेश में दोनों पक्षकारों के अधिवास की अपेक्षा करती है । कुछ भी हो, इस पहलू को गंभीर, विशेष रूप से स्त्रियों के प्रति अन्याय की संभावना के विरुद्ध जैसा कि ऊपर[1] स्पष्ट किया गया है, संतुलित किया जाना चाहिए, यदि किसी भी पक्षकार के अभ्यासतः निवास आदि की कसौटी को अपनाया जाता है ।

V. सिफारिश

सिफारिश ।

14.35 इस विषय के सभी पहलुओं को ध्यान मे रखते हुए, और ऊपर चर्चित विभिन्न मुद्दों पर विचार किए जाने के पश्चात् हम उस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि यह वांछनीय है कि उन देशों द्वारा, जहां दोनों पक्षकार अभ्यासतः निवासी थे, या उन देशों द्वारा जिनके कि दोनों पक्षकार राष्ट्रिक हैं, मंजूर किए गए विवाह-विच्छेदों या विधिक पृथक्करणों की मान्यता के लिए उपबन्ध किया जाए । इसके अतिरिक्त, अधिवास की वर्तमान कसौटी को बनाए रखा जाना चाहिए ।

1. ऊपर पैरा 14.30 ।

अध्याय 15

पत्नी का अधिवास और राष्ट्रिकता

I. अधिवास

15.1 अब विवाहित स्त्रियों से संबंधित दो प्रश्नों पर विचार कर लिया जाए— अधिवास और राष्ट्रिकता। साधारणतया, विवाहित स्त्री का अधिवास उसके पति का ही अधिवास होता है। इसे आश्रय का अधिवास कहा जाता है। अधिकारिता के आधार के रूप में, आश्रय के अधिवास की लम्बे समय से बहुत आलोचना होती रही है, विशेष-रूप से इस संदर्भ में कि यह उस विवाहित स्त्री के लिए अनुचित हो सकता है, जिसका कोई स्वतंत्र अधिवास न हो सकता हो। पत्नी का आश्रित अधिवास।

15.2 इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि जहां तक अधिवास का संबंध है, भारतीय न्यायालयों में, साधारणतया, जब कभी अवसर आए हैं, इंगलैण्ड के नियमों को अपनाया है ; उदाहरण के लिए, भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम के अधीन मामले। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम में एक विनिर्दिष्ट उपबन्ध है जिसके अधीन पत्नी का अधिवास साधारणतया पति का अधिवास ही होता है, यद्यपि उत्तराधिकार अधिनियम[1] के इस भाग का उपयोजन सीमित है[2]। इस स्थिति में, यदि इंगलैण्ड की विधि के नियम को रूपांतरित किया जाता है तो इस बारे में स्पष्ट उपबन्ध करना वांछनीय प्रतीत होता है। भारतीय विधि।

15.3 जहां अधिवास का लाभ यह है कि इसके अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति आ जाते हैं जो मनोवैज्ञानिक रूप से किसी एक देश से "संबंधित" होते हैं, वहीं इस सिद्धांत की मुख्य हानि पत्नी के आश्रित अधिवास का होना है। आश्रित अधिवास का यह सिद्धांत स्त्री पुरुष की समानता के आधुनिक सिद्धांत का अतिक्रमण करता है, तथा बहुत से कामनवेल्थ देशों में जैसे कनाडा[3] आस्ट्रेलिया[4] और इंगलैण्ड[5] में इसकी उपेक्षा की गई है। इंगलैण्ड में, पत्नी के आश्रित अधिवास का उत्पादन 1971 के ऐक्ट[6] की धारा 1 द्वारा किया गया है। यह धारा इस प्रकार है :— आश्रित अधिवास के सिद्धान्त की आलोचना।

"(1) (1) निम्नलिखित उपधारा (2) के अध्यधीन रहते हुए इस धारा के प्रवर्तन में आने के पश्चात् किसी समय किसी भी विवाहित स्त्री का अधिवास, केवल विवाह के आधार पर उसके पति के अधिवास के स्थान पर होने के बजाय, उन तत्वों के प्रति निर्देश से अभिनिश्चित किया जाएगा जिनके प्रति निर्देश से स्वतंत्र अधिवास रखने में समर्थ किसी अन्य व्यक्ति के अधिवास का अभिनिश्चय किया जाता है।

(2) जहां इस धारा के प्रवर्तन में आने के ठीक पूर्व कोई स्त्री विवाहित थी और तदुपरि उसका अधिवास आश्रय द्वारा पति का ही अधिवास हो गया था, वहां उसकी बाबत यह समझा जाएगा कि वह उस अधिवास को (यदि वह उसका उद्‌भव अधिवास नहीं भी है तो चयन के अधिवास के रूप में) प्रतिधारित करती है, जब तक कि वह इस धारा के प्रवृत्त होने पर या उसके पश्चात् किसी अन्य अधिवास के अर्जन या उसके पुनः प्रत्यावर्तन द्वारा परिवर्तित नहीं कर दिया जाता है।

(3) इस धारा का विस्तार इंग्लैण्ड और वेल्स[7] स्काटलेन्ड और नार्दन आयरलेन्ड पर है।

15.4 कुछ देश अभी तक कामन लॉ के नियम को लागू करते हैं।

1. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धाराएं 15 और 16।
2. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 4।
3. विवाह विच्छेद अधिनियम, 1968 (कनाड़ा)।
4. (आस्ट्रेलियन) मैट्रीमोनियल काजेज ऐक्ट, 1963।
5. न्यूजीलड़ मेट्रीमोनियल काजेज ऐक्ट, 1963।
6. 1971 का इंग्लिश ऐक्ट धारा 1।
7. ऊपर पैरा 15.2।

पत्नी के अधिवास के बारे में सिफारिश।

15.5 हमारे विचार से, यह उपबंध करना उचित होगा कि वर्तमान प्रस्थापनाओं के प्रयोजनों के लिए, स्त्री का अधिवास पति के अधिवास से स्वतंत्र रूप में अवधारित किया जाना चाहिए। ऐसा उपबंध इस समय भारत में लागू नियम की दृष्टि से ही, नहीं अपितु इस तथ्य की दृष्टि से भी अपेक्षित है कि कुछ देश अभी तक कामन लॉ नियम[1] को लागू करते हैं। ऐसा दृष्टिकोण भारतीय संविधान की आत्मा के अनुरूप होगा।

II. राष्ट्रिकता—साधारण

प्रारम्भिक।

15.5क अगला विषय जिस पर विचार किया जाना है, विवाहित स्त्री की राष्ट्रिकता के बारे में है। विधिक पद्धतियों ने इस संबंध में भिन्न-भिन्न दृष्किोणों को अपनाया है।

संभव वैकल्पिक सिद्धांत, जो विवाहित स्त्री की राष्ट्रिकता को शासित कर सकते हैं, निम्नलिखित हैं[3] :—

(1) विवाह का कोई प्रभाव नहीं होगा; या

(2) स्त्री वह राष्ट्रिकता ग्रहण करेगी जो उसके अपने चयन पर निर्भर होगी।

किन्तु इनमें परिवर्तन किया जा सकता है। यह सिद्धांत कि विवाह का कोई प्रभाव नहीं होगा, इंगलैण्ड[3] में कामन लॉ नियम था, किन्तु इसे द्वितीय नियम के कारण 1870 के नेचुरलाइजेशन ऐक्ट द्वारा परिवर्तित कर दिया गया था और यह कुछ समय तक प्रवर्तन में था। यह नियम संयुक्त राज्य अमरीका में तब तक था जब तक कि वह 1922 के "केबिल ऐक्ट" द्वारा उलट नही दिया गया था और उस समय से संयुक्त राज्य अमरीका के किसी नागरिक से, विवाह करने वाली स्त्री स्पष्ट देशीयकरण के बिना संयुक्त राज्य अमरीका की नागरिक नहीं होती। दूसरी ओर वह अपनी ब्रिटिश राष्ट्रिकता खो देती है और इस प्रकार राज्यहीन हो जाती है जब कि संयुक्त राज्य अमरीका की वह स्त्री, जो ब्रिटिश नागरिक से विवाह करती है विवाह होने पर भी अमरीका की राष्ट्रिकता प्रतिधारित किए रहती है। और दोहरी राष्ट्रिकता के ये मामले वर्तमान परस्पर विरोधी पद्धतियों का परिणाम है। साधारणतया उन से बचाव 1927 की फ्रांस की राष्ट्रिकता विधि के अधीन किया जाता है, जोकि सारतः तीसरे नियम को अपनाती है और स्त्री की राष्ट्रिकता के परिवर्तन को उसके द्वारा चयन पर छोड़ती है।

हम यह अनिवार्य समझतें हैं कि विवाहित स्त्री को अपनी स्वयं की नागरिकता अवधारित करने का अधिकार होगा, जो कि सम्पत्ति और राजनीतिक अधिकारों के संबंध में उसकी वर्तमान समानता के अनुरूप होगी। यूरोप में प्रवृत्त इंगलैण्ड के नियम को अपनाने की प्रतीत होती है और वह स्त्री की राष्ट्रिकता को पति की राष्ट्रिकता के अनुरूप बनाती है। स्वतंत्रता और समानता के इस दुर्बोध विषय से पृथक यही संभवतया सुविधानजक नियम हैं। जो भी हों, सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय तो यह व्यवस्था करना नहीं है कि किसी विवाहित स्त्री की कोई विशेष राष्ट्रिकता होगी किंतु यह है कि वह विवाह द्वारा, दूसरी राष्ट्रिकता प्राप्त किए बिना अपनी मूल राष्ट्रिकता नहीं खोएगी। दूसरे शब्दों में, एक राष्ट्रिकता का खोना दूसरी राष्ट्रिकता के अर्जन पर आश्रित होना चाहिए और यही लीग आफ नेशन्स कोडिफाइंग कमेटी का एक सुझाव था, जिसने कि इस विषय पर कार्य किया था।

ग्रेशियश[4] सोसायटी के समक्ष, जहां की स्थिति के बारे में ब्यौरेबार बताया गया था, श्री एफ० लीबेलिया जोनस, एम० पी० द्वारा पढ़े गए पेपर में संपूर्ण प्रश्न पर सुविचारित सर्वेक्षण किया गया है। इन्टरनेशनल लॉ कमीशन के लिए रिपोर्टर के रूप में हडसन ने निम्नलिखित राय[4] व्यक्त की थी :—

"कुछ राज्यों की विधि के अधीन, राष्ट्रिकता विधि की क्रिया द्वारा स्वतः प्रदत्त हो जाती है, जैसे कि सिविल प्रास्थिति में कतिपय परिवर्तन का प्रभाव, दत्तक ग्रहण, वैधीकरण, सम्बन्धन द्वारा मान्यता विवाह। किसी विश्वविद्यालय में नियुक्ति में भी कुछ राष्ट्रीय विधियों के अधीन राष्ट्रिकता का प्रदान किया जाना अंतर्वलित है।"

1. ऊपर पैरा 15.4।

2. ला जरनल, पृष्ठ 144 (1930) देखिए।

3. एफ० लीवेलिया जोंस, एम० पी० ट्रांजेक्शन्स आफ दि ग्रेशियश सोसाइटी (1930), जिल्द 15।

4. यर्बक, आई० एल० सी० (1952) 11–8 उपयोग किया गया रूबारिक: "कन्फरमेन्ट आफ नेशनलिटी बाई आपरेशन आफ ला" है।

जब कि राष्ट्रिकता प्रदान किए जाने के लिए इन कारणों को राज्यों के लगातार आचरण द्वारा मान्यता दी गई है और इसलिए इन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि संगत समझा जा सकता है, दूसरे कारणों को इस प्रकार मान्यता नहीं दी गई है।"

III. राष्ट्रिकता इंगलैंड की विधि

15.6 इंग्लैंड के कामन लॉ के अधीन, कम से कम 1834 तक विवाह से स्त्री की राष्ट्रिकता पर प्रभाव नहीं पड़ता था। उस वर्ष रिपोर्ट किए गए काउन्टीज़ कानवेज के मामले[1] में बैरन पारके ने यह कहा था :— 1834 तक इंग्लैंड की विधि।

"......फ्रांस की कोई स्त्री इंगलैंड के व्यक्ति से विवाह करके किसी भी प्रकार ब्रिटिश प्रजाजन नहीं बन जाती है। वह अन्यदेशीय बनी रहती है और वह स्त्री धन पाने की हकदार नहीं होती है"।

उसने इस सम्बन्ध में लिटिलटन[2] में कोक के प्रति निर्देश किया था, किन्तु इस सम्बन्ध में स्थिति इंगलैण्ड में कानून द्वारा परिवर्तित कर दी गई है।

नेचुरालाइजेशन ऐक्ट, 1870 की धारा 18 में पहले यह अधिकथित किया गया है कि कोई भी स्त्री, जो ब्रिटिश प्रजाजन है और किसी अन्यदेशीय व्यक्ति से विवाह कर लेती है, अन्यदेशीय ही समझी जानी चाहिए। ब्रिटिश नेशनलिटी ऐण्ड स्टेट्स आफ एलियन्स ऐक्ट 1914 की धारा 10(1) में यही सिद्धांत अधिक विस्तार से प्रकट किया गया है और उसमें यह अधिनियमित[3] किया गया है कि "ब्रिटेन के व्यक्ति की पत्नी के बारे में यह समझा जाएगा कि वह ब्रिटिश प्रजाजन है, और किसी अन्यदेशीय की पत्नी के बारे में यह समझा जाएगा कि वह अन्यदेशीय है"।

इस विषय पर अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशनों के परिणामस्वरूप स्थिति में पुनः परिवर्तन कर दिया गया था, और 1933 के एक संशोधन ने इस नियम को उलट दिया। 1948 को पश्चात्वर्ती ऐक्ट, ने जिसमें कि इस विषय पर वर्तमान ब्रिटिश विधि अन्तर्विष्ट है, यह उपबंध किया है कि विवाह स्वयं, किसी स्त्री की राष्ट्रिकता में परिवर्तन नहीं करता।

IV. राष्ट्रिकता भारतीय विधि

15.7 राष्ट्रिकता से संबंधित भारतीय स्टेट्यूट विधि की बाबत यह कहा जा सकता है कि नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा 5(1)(ग) के अधीन किसी भारतीय नागरिक से विवाहित स्त्री स्वतः भारतीय नागरिक नहीं हो जाती है यद्यपि वह इसके लिए आवेदन कर सकती है और भारतीय नागरिक के रूप में उसे रजिस्टर किया जा सकता है। इस प्रश्न का विनिश्चय कि उसे रजिस्टर किया जाना चाहिए या नहीं, केन्द्रीय सरकार के विवेक पर छोड़ दिया गया है। सारतः नागरिकता अधिनियम को स्कीम विवाहित स्त्री[4] की राष्ट्रिकता पर हुए संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन के अनुरूप है। नागरिकता अधिनियम में उपबन्ध।

किन्तु नागरिकता अधिनियम के उपबन्धों का, इस प्रश्न का अवधारण करने में कोई उपयोग नहीं है कि किसी विदेशी से विवाहित भारतीय स्त्री कहां तक विदेशी नागरिक बन जाती है। वह अधिनियम इस प्रश्न के बारे में भी कुछ नहीं बताता है कि भारतीय स्त्री, विवाह पर, कहां तक उस दूसरे देश की राष्ट्रिकता का अर्जन करती है जिसका राष्ट्रिक उसका पति है। इन प्रश्नों का अवधारण अधिनियम से पृथकतः किया जाना है।

15.8 आसाम उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित[5] किया गया है भारत में ऐसी कोई उपधारणा नहीं है कि पत्नी, विवाह द्वारा, पति की राष्ट्रिकता का अर्जन कर लेगी। पत्नी की राष्ट्रिकता के बारे में निर्णयज विधि।

जहां तक राष्ट्रिकता का संबंध है, राष्ट्रिकता का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए पति और पत्नी की एकता के सिद्धांत का इंगलैण्ड में या अन्य कामनवेल्थ अधिकारिता[6] वाले देशों में समर्थन किया गया प्रतीत नहीं होता है।

1. काउन्टीज़ कानवेज केस, (1834) 2 नेप 364, 368, जी० बाई० आशा, ए० आई० आर० 1929 मुम्बई 81, 84 में उद्धृत किया गया है।
2. कोक आन लिटिटेन, पृष्ठ 326।
3. क्रेज, इन्टरनेशनल लॉ, (1970) पेज, 292।
4. आर्टिकल 3, यू० एन० कन्वेंशन, यू० एन० सीरीज, जिल्द 139, पृष्ठ 87।
5. आसाम एल० एस० 1970, आसाम 209 (क्विनक्युनियल डाइजेस्ट 1966-70, पृष्ठ 275, राइट हैंड, अण्डर सीटीजनशिप ऐक्ट, धारा 2(ख)।
6 वुड फिलिप्स, कान्स्टीट्यूशनल एण्ड एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ (1967), पृष्ठ 416 और 418।

किन्तु यह प्रतीत होता है कि यह सिद्धांत कुछ विदेशों में स्वीकार किया गया है और ऐसा उस स्थिति के कारण है कि प्रस्थापित विधि में यह उपबंध करना वांछनीय हो सकता है कि पत्नी की राष्ट्रिकता पति से पृथक् रूप में अवधारणीय होनी चाहिए ।

V. सिफारिश

विधायी युक्ति ।

15.9 अतः वह स्थिति जो कि उपर्युक्त विचार-विमर्श से हमारे सामने आती है, यह है कि यह उपबंध करना वांछनीय[1] है कि यह नियम कि विवाह पर पत्नी पति के अधिवास[2] या राष्ट्रिकता[3] का अर्जन कर लेती है, विदेशी विवाह-विच्छेदों और पृथक्करणों की मान्यता के संबंध में लागू नहीं होगा ।

हमने ऊपर जो कुछ कहा है, उसके बारे में उपबंध करने के कई तरीके हैं और जब तक इस उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर लिया जाता है तब तक इस बात का कोई महत्व नहीं है कि कौन सी प्रारूपण युक्ति को अपनाया जाता है ।

हम नीचे इस प्रयोजन के लिए कुछ प्रारूप दे रहे हैं।

पत्नी के अधिवास और राष्ट्रिकता के बारे में प्रस्थापित धारा

(1) इस धारा के प्रयोजनों के लिए और उपधारा (2) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् किसी भी समय, किसी विवाहित स्त्री का अधिवास, केवल विवाह के आधार पर उसके पति का अधिवास ही उसका अधिवास होने की बजाय, उन्हीं तत्वों के प्रति निर्देश से अभिनिश्चित किया जाएगा जैसा स्वतंत्र अधिवास रखने में समर्थ किसी अन्य व्यक्ति के मामले में होता है।

(2) जहां इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पूर्व कोई स्त्री विवाहित थी और तदुपरि उसका अधिवास आश्रय के कारण पति का ही अधिवास हो गया था वहां, उसके बारे में यह माना जाएगा कि वह उसी अधिवास को (यदि वह उसका उद्भव का निवास नहीं भी है, तो चयन अधिवास के रूप में) प्रतिधारित किए हुए है, जब तक कि वह अधिवास, इस अधिनियम के प्रारम्भ पर या उसके पश्चात् दूसरे अधिवास के अर्जन या पुनः प्रवर्तन द्वारा परिवर्तित नहीं कर दिया जाता है।

आनुकल्पिक प्रारूप

(1) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए और उपधारा (2) के उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए, किसी ऐसी स्त्री का अधिवास, जो विवाहित है या किसी भी समय विवाहित रही है इस प्रकार अवधारित किया जाएगा, मानो उसने कभी विवाह नहीं किया था।

(2) जहां इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पूर्व, कोई स्त्री विवाहित थी और तदुपरि उसका अधिवास आश्रय द्वारा उसके पति का अधिवास हो गया था, वहां उसके बारे में यह माना जाएगा कि वह उस अधिवास को (यदि वह उसका उद्भव का अधिवास नहीं भी है तो चयन अधिवास के रूप में) प्रतिधारित किए हुए है, जब तक कि वह अधिवास, इस अधिनियम के प्रारम्भ पर या उसके पश्चात् दूसरे अधिवास के अर्जन या पुनः प्रवर्तन द्वारा परिवर्तित नहीं कर दिया जाता है।

दूसरा आनुकल्पिक प्रारूप

(1) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए और उपधारा (2) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, विधि का कोई ऐसा नियम, जिसके द्वारा कोई स्त्री अपने विवाह के पश्चात् अपने पति के अधिवास या राष्ट्रिकता का अर्जन कर लेती है, ध्यान में रखा जाएगा।

(2) उपधारा (2) उसी प्रकार है जैसी कि वह मुख्य प्रारूप में है।

---

1. ऊपर पैरा 15.7 ।
2. ऊपर पैरा 15.3 ।
3. ऊपर पैरा 15.4 ।

अध्याय 16

मान्यता के बारे में अपवाद—सूचना और अवसर

16.1 विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की मान्यता, चाहें प्रस्थापित नए आधारों[1] पर दी जाए या हमारी विद्यमान विधि में पहले से ही विधिमान्य माने गए आधारों[2] पर, वह कतिपय ऐसी अध्यारोही अपेक्षाओं के अध्यधीन होनी चाहिए, जो कि मान्यता के साधारण नियम के लिए अपवादों के रखे जाने को न्यायोचित ठहराती हों। प्रारम्भिक।

16.2 निर्णय पर आक्रमणों को साम्पार्श्विक, प्रत्यक्ष और साम्यिक रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। साम्पार्श्विक आक्रमण केवल ऐसे निर्णय के बारे में, जोकि अधिकारिता की कमी के कारण शून्य हो, प्रवृत्त होता है इसका सिद्धांत यह है कि कोई न्यायालय कार्य करने की शक्ति के बिना, किसी भी प्रकार, विधि संबंधों[3] पर प्रभाव नहीं डाल सकता। किसी निर्णय पर सीधा आक्रमण, मूल कार्यवाही में त्रुटि के कारण निर्णय को अपास्त कराने का प्रयास है। अन्त में, साम्यिक् अनुतोष के लिए प्रार्थना—चाहे स्वतंत्र कार्यवाही के रूप में हो या प्रतिरक्षा के रूप में—किसी ऐसे निर्णय के प्रभाव से, जो अनुचित साधनों द्वारा अभिप्राप्त किया गया है, पक्षकार को संरक्षण देती है। कपट अंतिम प्रवर्ग से संबंधित है। निर्णय पर आक्रमण के आधार।

16.3 मोटे तौर पर, मान्यता के बारे में ऐसे अपवादों का उपबन्ध करने की आवश्यकता निम्नलिखित मामलों में उद्भूत होती प्रतीत होती है— ऐसे मामले जिनमें अपवाद की आवश्यकता है।

(क) जिनमें भारतीय[4] विधि के अनुसार कोई अस्तित्वयुक्त विवाह नहीं है;

(ख) जिनमें विदेशी न्यायालय[5] द्वारा नैसर्गिक न्याय के नियमों का पालन नहीं किया गया है;

(ग) जिनमें लोक नीति, विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण[6] को अमान्यता की अपेक्षा करती है;

(घ) कपट[7]।

हम इस अध्याय में प्रथम दो के बारे में विचार करेंगे, शेष के बारे में अन्य अध्यायों में चर्चा की जाएगी।

16.4 सर्वप्रथम, ऐसे मामले[8] के बारे में, जहां भारतीय विधि के (जिसके अन्तर्गत उसकी प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियम और प्रस्थापित अधिनियम[9] के उपबन्ध भी हैं) अनुसार कोई अस्तित्वयुक्त विवाह नहीं है, ऐसी स्थिति में विवाह-विच्छेद की अमान्यता के लिए औचित्य स्पष्ट है जहां ऊपर बताए गए अर्थ में भारतीय विधि के अनुसार कोई अस्तित्वयुक्त विवाह नहीं है और स्थिति ऐसी है कि वहां विवाह विषयक भारतीय विधि उचित रूप से लागू है, वहां विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को मान्यता प्रदान करना तर्कसंगत नहीं होगी और संभ्रम उत्पन्न करेगा। विवाह-विच्छेद की मान्यता का अभिप्राय विवाह की मान्यता होगा और यदि भारतीय विधि के अनुसार वहां कोई विवाह नहीं है तो इससे एक असंगत स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। कोई अस्तित्वयुक्त विवाह न होना।

1. ऊपर अध्याय 14।
2. ऊपर अध्याय 13।
3. नोट, "एक्स डवलपमेन्ट—जुडिकेटा देखिए", (1952) हारवर्ड ला रिव्यू 818, 850।
4. आगे पैरा 16.4।
5. आगे पैरा 16.7।
6. आगे अध्याय 17।
7. आगे अध्याय 18।
8. ऊपर पैरा 16.4।
9. आगे पैरा 16.5।

प्रस्थापित अधिनियम के अधीन विधिमान्य विवाह-विच्छेद के पश्चात्, विधिमान्य विवाह का न होना निर्देशित करने वाली कतिपय विशेष परिस्थितियां।

16.5 इस संदर्भ में, इस पहलू के प्रति भी निर्देश किया जाना चाहिए। जहां प्रस्थापित अधिनियम के उपबन्धों को लागू करने का प्रभाव 'क' विदेश द्वारा मंजूर किए विवाह-विच्छेद को विधिमान्यता प्रदान करना होगा, वहां स्पष्ट रूप से वह विवाह जिसके संबंध में विवाह-विच्छेद की डिक्री दी गई है, विवाह-विच्छेद की डिक्री के पश्चात् अस्तित्व में नहीं रह सकता, यदि डिक्री प्रस्थापित अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले वर्ग की डिक्री है। अब, यह हो सकता है कि 'ख' देश (अर्थात् दूसरा देश) उस विवाह-विच्छेद को मान्यता न दे और उस देश का न्यायालय बाद में उसी विवाह के संबंध में उन्हीं पक्षकारों को विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान कर दे। इस पश्चात्वर्ती विवाह-विच्छेद को हमारे न्यायालयों द्वारा मान्यता नहीं दी जा सकती है, क्योंकि हमारे न्यायालय प्रथम विवाह-विच्छेद को मान्यता देने के लिए आबद्ध हैं वह विवाह हमारी विधि के अनुसार अस्तित्व में नहीं रहता है। इसलिए, द्वितीय विवाह-विच्छेद को हमारे न्यायालयों द्वारा शून्य माना जाएगा।

एक नकारात्मक दृष्टान्त भी लिया जा सकता है। हम उपधारणा करते हैं कि प्रस्थापित उपबन्धों के आधार पर किसी विशेष विदेशी विवाह-विच्छेद को भारत में मान्यता नहीं दी जा सकती। तथापि विवाह-विच्छेद को 'क' देश द्वारा मान्यता दी जाती है और उस विवाह का एक पक्षकार, जो अब विवाह-विच्छेद प्राप्त है, तीसरे व्यक्ति के साथ 'क' देश में पुनर्विवाह कर लेता है। यह पुनर्विवाह हमारी विधि की दृष्टि से विधिमान्य विवाह नहीं है, क्योंकि हमारे न्यायालय विवाह-विच्छेद को मान्यता नहीं देते हैं। अतः द्वितीय विवाह हमारी विधि की दृष्टि से शून्य है। यदि यह पुनर्विवाह किसी विदेश में, विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित कर दिया जाता है तो उस विवाह-विच्छेद को, हमारे न्यायालयों की धारणाओं के अनुसार, उससे संबंधित अस्तित्वयुक्त (विधिमान्य) विवाह न होने के कारण, भारत में मान्यता नहीं दी जा सकती। ऐसी स्थिति को सुनिश्चित करने के लिए यह वांछनीय है कि मान्यता के सामान्य नियमों के अपवाद रूप में यथोचित उपबन्ध किए जाएं।

एक साधारण सूत्र में, जैसे कि—"जहां कोई अस्तित्वयुक्त विवाह नहीं है"—ऐसे सभी मामले आ जाएंगे। इंग्लैण्ड के ऐक्ट[1] में इस विषय पर इन्हीं आधारों पर उपबन्ध है।

16.6 यह भी कहा जा सकता है कि ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहां भारतीय विधि (आन्तरिक भारतीय विधि) विवाह-विच्छेद को लागू न होती हो।

प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियमों को, जिस रूप में वे भारत में प्रवृत्त हैं, ऐसे ही मामले में ध्यान में रखा जाना है और यदि इन नियमों के उपयोग का परिणाम यह है कि कोई अस्तित्वयुक्त विवाह ही नहीं है, तो विवाह-विच्छेद की मान्यता नहीं दी जा सकती। यह स्थिति वहां उत्पन्न हो सकती है जहां विवाह, प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के भारतीय नियमों के उपयोग के कारण, अकृत और शून्य है। उदाहरण के लिए, यदि विवाह प्रतिषिद्ध वर्गों की बाबत कानूनी अपेक्षाओं के अतिक्रमण में भारत में अनुष्ठापित किया गया था तो हमारी विधिक और न्यायिक पद्धति की गरिमा और संगतता की यह अपेक्षा होगी कि विवाह-विच्छेद को न माना जाए।

नैसर्गिक न्याय का भंग।

16.7 इसके साथ ही हम मान्यता के संबंध में आवश्यक द्वितीय अपवाद[2] पर आते हैं। यह अपवाद नैसर्गिक न्याय का भंग करते हुए पारित किसी विदेशी डिक्री से संबंधित है। इंग्लैण्ड के ऐक्ट[3] में इस विषय पर विनिर्दिष्ट उपबन्ध है, जिसका सार यह है कि यदि किसी भी दूसरे पक्षकार को कार्यवाहियों की युक्तियुक्त सूचना नहीं दी गई थी या दूसरे पक्षकार को, सूचना के अतिरिक्त, सुनवाई का कोई युक्तियुक्त अवसर नहीं दिया गया था तो विदेशी डिक्री को इंग्लैण्ड में मान्यता नहीं दी जाएगी। दोनों ही प्रयोजनों के लिए—अर्थात् सूचना की युक्तियुक्तता और सुनवाई की युक्तियुक्तता का अवधारण करने के लिए—कार्यवाहियों की प्रकृति और (मामले की) "सभी परिस्थितियों" को ध्यान में रखा जाना होगा।

इंग्लैण्ड के ऐक्ट में सुसंगत उपबन्ध इस प्रकार है—

"(2) इस धारा की उपधारा (1) के अध्यधीन रहते हुए, इस ऐक्ट या इसकी धारा 6 द्वारा परिरक्षित किसी नियम के आधार पर, ब्रिटिश द्वीपों के बाहर अभिप्राप्त किए गए विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता को स्वीकृत करने से तब और केवल तब इंकार किया जा सकता है, यदि—

1. इंग्लिश ऐक्ट, 1971 की धारा 8(1) ऊपर पैरा 10.15।
2. ऊपर पैरा 16.3।
3. इंग्लैण्ड का ऐक्ट, (1971) की धारा 8(2)।

(क) यह पति या पत्नी में से किसी के द्वारा,––

(i) कार्यवाहियों की प्रकृति और सभी परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए, दूसरे विवाहितजन को कार्यवाहियों की सूचना देने के लिए ऐसे उपाय किए गए बिना, जो युक्तियुक्त रूप से किए जाने चाहिए थे; या

(ii) दूसरे विवाहित जन को, कार्यवाहियों में भाग लेने के लिए (सूचना के अभाव से अन्यथा किसी कारण से) ऐसा अवसर दिए गए बिना, जो उपर्युक्त विषयों को ध्यान में रखते हुए उसे युक्तियुक्त रूप से दिया जाना चाहिए था; या"

अभिप्राप्त किया गया था।

इसे हमारी विधि में भी अपनाया जा सकता है क्योंकि यह सुस्पष्ट रूप से उचित और न्याय के सिद्धान्तों द्वारा अपेक्षित है।

अध्याय 17

लोक नीति

I. प्रारम्भिक

प्रारम्भिक I

17.1 लोक नीति विदेशी निर्णयों की मान्यता की बाबत एक अन्य संभव अपवाद का गठन करती है।

लोक नीति का निश्चित अभिव्यक्ति न होना।

17.2 आरम्भ में, यह अवश्य कहा जाना चाहिए कि लोक नीति अमान्यता'[1] के लिए अत्यन्त निश्चित आधार नहीं हो सकती। "लोक नीति" अभिव्यक्ति अत्यन्त निश्चित अभिव्यक्ति नहीं है। किन्तु मोटे तौर पर, उसे विधिक पद्धति[2] के साधारण सैद्धांतिक दृष्टिकोण के प्रतिबिंब के रूप में वर्णित किया जा सकता है।

एडविन डब्ल्यू पेटरसन[3] ने यह कथन किया है कि "नीति" व्युत्पत्ति विषयक अर्थों में, नैतिक या नीति विषयक/सिद्धान्तों की बजाए सरकारी कार्रवाई की योजनाओं के प्रति निर्देश करती है। किन्तु यह अभिव्यक्ति अब सुपरिचित है और लगभग सभी विधि पद्धतियों में "लोक नीति" या "लोकादेश" या किसी ऐसी ही धारणाओं के आधार पर कोई विदेशी निर्णयों को मान्यता न देने के लिए कोई न कोई उपबन्ध होता है। ब्यौरे और नाम भिन्न हो सकते हैं किन्तु धारणा सारतः समान है।

लोक नीति का पहलू सत्या[4] वाले मामले में वर्णित किया गया था जहां उच्चतम न्यायालय ने निम्न-लिखित कहा था।

> "38--जैसा कि हमने आरम्भ में ही कहा है कि अमरीका और इंग्लैण्ड की विधियों के विरोध के इन सिद्धान्तों को भारतीय न्यायालयों द्वारा अन्धाधुन्ध रूप से नहीं अपनाया जाना चाहिए। यथार्थ विवाह-विच्छेद और सारवान् न्याय की हमारी धारणाओं तथा हमारी लोक नीति के विशिष्ट सिद्धांतों से हमारी अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियम अवधारित होने चाहिएं। किन्तु इन नियमों को अवधारित करने में समानान्तर अधिकारिता के संबंध में विदेशी विधि को जानना उपयोगी सिद्ध होगा। हम अपने राज्यक्षेत्र के भीतर प्रभुत्व सम्पन्न हैं किन्तु 'विदेशी विधि को ध्यान में रखना प्रभुत्व सम्पन्नता का अल्पीकरण नहीं है' और जैसे कि न्यायाधिपति कारडोजी ने कहा है 'हम इतने प्रान्तीयतावादी नहीं हैं कि यह कहें कि हर एक समस्या का हल इसलिए गलत है क्योंकि हम अपने घर में उस पर दूसरी प्रकार से विचार करते हैं और हम विदेशी न्यायिक प्रक्रियाओं की तब तक उपेक्षा नहीं करेंगे जब तक कि ऐसा करने से 'न्याय के कुछ मूल सिद्धान्तों, सुनैतिकता की प्रचलित कुछ धारणाओं और जनकल्याण की कुछ पुरानी परम्पराओं का अतिक्रमण नहीं होगा।"
>
> लाउक्स बनाम स्टैण्डर्ड आयल कम्पनी आफ न्यूयार्क (1918) 224 एनवाई-99 पृष्ठ 111, लोक नीति के विभिन्न दृष्टिकोणों को अनेक[5] बार वर्णित किया गया है और हम भी उसके प्रतिवाद[6] में निर्देश करेंगे। यह धारणा अनिवार्यतः लचीली है। ऐसे मामले में, जहां मामला किसी कानून द्वारा या स्पष्ट प्रमाणिक सिद्धान्तों द्वारा शासित नहीं होता है वहां इस धारणा में कि "लोकनीति" क्या है,

---

1. फ्रूड़, "रिफलेक्शन आफ पब्लिक पालिसीज इन दि इंग्लिश कांफलेक्ट आफ ला," (1954) 39 ट्रांजेक्शन्स आफ ग्रोटियस सोसाइटी, 38, 831।

2. विंफिल्ड़, "पब्लिक पालिसी" (1929) 42 हार्वर्ड ला रिव्यू 76 ।

3. पेटरसन, ज्यूरिसप्रूडेंस (ब्रूकीलइन 1953) पृष्ठ 282 ।

4. सत्या बनाम तेजा, ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 104 115, पैरा 38 (1975) 1 उ० नि० प० 918 ।

5. (क) नोरमैन मार्च, "सीवियरेंस आफ इल्लीगलिटी" (1948) 64 ला क्वाटरली रिव्यू 230, 347;
   (ख) मुसबोम, "पब्लिक पालिसी इन कांफिलिक्ट आफ लाज" (1940) 49 येल ला जरनल 1027;
   (ग) लाइट, "पब्लिक पोलिसी इन इंग्लिश ला" 38 ला क्वाटरली रिव्यू, 207 ।

6. ऊपर पैरा 14.11 से 14.14 तक

औचित्य के प्रचलित सिद्धान्तों की दृष्टि से सम्पूर्ण समुदाय के लिए, हानियों[1] के विरुद्ध लाभों का संतुलन होना चाहिए।

17.3 लोकनीति इस बात से सम्बद्ध नहीं है कि विधि क्या होनी चाहिए। विनफिल्ड[2] ने बहुत समय पूर्व बताया था कि न्यायिक विधान में कोई नैतिक प्रतिमान अन्वेषणनीय हो सकते हैं, किन्तु लोकनीति में ऐसा नहीं होता है। उसने यह कहा था कि यह सिद्धांत इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है कि "वह क्या है जोकि लोक समुदाय अब चाहता है"।

लोकनीति का आदर्श से सम्बन्धित न होना।

यह इस प्रश्न के प्रति मूक है कि "वह क्या है जिसकी एक आदर्श समुदाय को अपेक्षा करनी चाहिए?" लोकनीति पर न्यायिक विनिश्चय हमें ग्रीक त्रासदी कोरस की सामान्योक्ति से कुछ अधिक जटिल बात प्रदान करेगा किन्तु यह प्लेटो की रिपब्लिक में दिए गए नागरिकों के आदर्श तक नहीं पहुंचेगा और यदि कोई बिना ढिठाई के ऐसा कह सके तो इसका परिणाम जब न्यायाधीश कोई भी ऐसा प्रयास करें तो खतरे और संभ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। हमारी कामन लॉ अब ऐसी परिपक्व अवस्था में है कि उसके वृक्ष के तने के रूप में सव्यवस्थित हैं, किन्तु उसकी नई शाखाओं की दिशा कोई भी हो सकती है।

17.4 लोक नीति के बारे में यह है कि उसके महत्व की बाबत विभिन्न न्यायाधीशों द्वारा या भिन्न-भिन्न अवसरों[3] पर एक ही न्यायाधीश द्वारा व्यक्त की गई परस्पर विरोधी रायों का मिलना आश्चर्यजनक नहीं होगा। 1824 में कोर्ट ऑफ कामन प्लीज में और कोर्ट आफ किंग्स बेन्च[3] में ऐसी उक्तियां दी गई थीं जिनका सामंजस्य करना सरल नहीं है। किंग्स बेंच वाले मामले में मु० न्याय० अबोट ने लोक नीति को न केवल वैसा ही ग्रहण किया जैसा कि उन्होंने उसे पाया था, अपितु वह उसे एक कदम और आगे ले गए[4]। दूसरी ओर, कामन प्लीज वाले मामले[5] में मु० न्याय० बेस्ट ने यह विचार किया कि न्यायालय उस स्थिति से बहुत आगे बढ़ गए थे जिसके लिए कि वे नीति के प्रश्नों पर प्राधिकृत थे और जहां ऐसे प्रश्न संदेहपूर्ण थे, वहां उन्हें विधानमण्डल के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए। रिचर्डसन बनाम मेलिस[6] वाले उसी मामले में बुरो ने वही दृष्टिकोण अपनाया था और "निरंकुश अश्व" अभिव्यक्ति का उपयोग किया था। यह ऐसी अभिव्यक्ति है जिसके बारे में उन्होंने कहा था कि उन्होंने उसे मु० न्या० होबर्ट से ग्रहण किया था और जिसको कि असंख्य बार उद्‌धृत किया जा चुका है।

लोकनीति का इतिहास।

17.5 कानूनों में इस आशय का व्यावृत्ति खंड समाविष्ट करने की रोमन पद्धति यह थी कि अधिनियमिति का ऐसा कोई प्रयोजन नहीं था जिसे निराकृत करना परमपावन[7] और न्यायोचित था। लोकनीति कुछ ऐसा परिणाम प्राप्त कर लेती है।

रोमन विधि।

17.6 संविदाओं के क्षेत्र में लोकनीति सुज्ञात है। भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 23 में इसकी मान्यता दी गई है। व्यवसाय के निर्बन्धन में की गई संविदाओं में निहित लोक नीति के बारे में एलिजाबेथ[8] तक के युग से जानकारी प्राप्त होती है और यद्यपि बहुत से मामलों में लोकनीति का उल्लंघन नहीं किया गया है या उसे केवल विनिचश्य के एक आधार के रूप में अधिमान दिया गया है, तो भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसे स्पष्ट रूप से माइकल बनाम रेनोल्ड[9] के समय तक मान्यता प्राप्त हो गई थी। यह मामला 1711 में विनिश्चित किया गया था और बहुत समय तक यह निर्णय विधि की इस शाखा में सीमा चिन्ह बना रहा था।

संविदाओं में लोकनीति।

इस धारणा के विभिन्न रूप 17वीं और 18वीं शताब्दी में रिपोर्ट किए गए निर्णयों में पाए जाते हैं।

1. ग्राप्ट बनाम ग्राप्ट (1947) 2 आल इंग्लिश रिपोर्ट्स 677। (लार्ड न्यायाधिपति कोहन)।
2. विफिल्ड "पब्लिक पालिसी" (1929) 42 हार्वर्ड ला रिव्यू 76, 87।
3. डोक्सहाल ब्रिज कम्पनी बनाम स्पेन्सर (1817). 2 मद्रास, 356, 365 में न्यायाधीश प्लुमर, वी० सी० एण्ड एल्डन को और वार्ड बनाम होप, (1824) 2 बी० एण्ड सी० 661, 670 में मुख्य न्यायाधीश एबोट को देखिए।
4. कार्ड बनाम होप, (1824) 2, बी० एण्ड सी० 661, 676 लोक नीति निर्णय में उल्लिखित नहीं है, किन्तु विनिश्चय में अन्तर्निहित है।
5. रिचर्डसन बनाम मेलिस, (1824) 2 बिंग 229, 242–243, 252।
6. रिचर्डसन बनाम मेलिस, (1824) 2 बिंग 229।
7. विफील्ड, "पब्लिक पालिसी", (1929) 42 हार्वर्ड ला रिव्यू 76, 159।
8. विफील्ड, 'पब्लिक पालिसी' (1929) 42 हार्वर्ड ला रिव्यू 76, 85।
9. "अगेन्स्ट दि पालिसी आफ दि कामन ला", आई० पी० डब्ल्यू० एम० एस०, 181, 183 (1711), "विधि की नीति के विरुद्ध" पृष्ठ 187, "एन काउन्टर इज नसेसिटी डेल कामनवैल्थ" एनन मूर के० बी० 242 (1586); क्लेइगेट बनाम बेचलर, ओवेन 143 (1600) "सर्वमान्य की भलाई के विरुद्ध" जुलियट बनाम ग्रोड, नोय 98 (1619)।

लोकनीति और शाश्वतता नियम ।

17.7 इसके पश्चात् लोकनीति शाश्वतताओं के विरुद्ध नियम की बाबत ड्यूक ऑफ नोरफोक वाले मामले[1] में दिए गए उस महत्वपूर्ण विनिश्चय में प्रचुरता से पाई जाती है ।

इस प्रश्न का कि: "यदि आप यहां नहीं रुकते हैं तो आप कहां रुकेंगे ?" लार्ड नौटिंघम ने प्रत्युत्तर दिया था कि : "मैं आपको बताऊंगा कि मैं कहा रुकूगा ; मैं वहीं रुक जाऊंगा जहां-कहीं कोई स्पष्ट असुविधा प्रतीत होगी ।"

विधि वैषम्य और लोकनीति ।

17.8 हमने उपर्युक्त चर्चा में विधि की अन्य शाखाओं में से कुछ दृष्टांत लिए हैं । सम्यक् अनुक्रम में, हम विधि वैषम्य में लोकनीति के क्षेत्र के बारे में चर्चा करेंगे । किन्तु हमारे ऐसा करने के पूर्व, साधारणतया इसके उचित विस्तार क्षेत्र की बाबत कतिपय मामलों के प्रतिनिर्देश से सुविधापूर्वक चर्चा कर ली जाए ।

II. विधि वैषम्य में लोक नीति पर अमरीकी मामले

राज्येत्तर वाद हेतुकों के सम्बन्ध में लोकनीति ।

17.9 लोक नीति आवश्यक रूप से किसी विशेष देश की प्रचलित विधियों से तदात्मक नहीं होती है । प्रसिद्ध लाउक्स वाले मामले[2] में न्या० कारडोजो ने यह मत व्यक्त किया था कि "हम इतने प्रान्तीयतावादी नहीं हैं कि यह कहें कि समस्या का प्रत्येक हल इसलिए गलत होता है क्योंकि हम समस्या को 'अपने देश से अन्यथा" से सुलझाते हैं ।' मर्टज् वाले मामले[3] में, न्यूयार्क न्यायालय कारडोजो के जाने के पश्चात् पुराने नियम पर वापस लौट आया था । किन्तु हाल ही में, न्यूयार्क के अपील न्यायालय ने (कारडोजो के न्यायालय ने) राज्येत्तर वाद हेतुकों के लिए अपने प्रबुद्ध आतिथ्य को पुनः स्थापित किया है । ये वाद हेतुक वे वाद हेतुक हैं जिन्हें कि न्ययार्क की मुख्य विधि ने प्रथमतः मंजूरी नहीं दी होती ।

यह इन्टर कान्टिनेनटल होटल्स कारपोरेशन बनाम गोल्डन[4] का मामला था जिसमें न्यूयार्क की कार्यवाही चैक और अनेक "आइ० ओ० यू० की बाबत थी प्रतिवादी (न्यूयार्क निवासी) ने पर्टो रिको में धन के बदले में दिए थे । इन्हें बाद में वह वादी के जूआ कक्ष में हार गया । ये जूआ संबंधी ऋण पर्टी रिकन विधि के अधीन विधिमान्य थे किंतु अन्तर्वलित संविदाएं न्यूयार्क में विधिमान्य नहीं थीं । किन्तु वसूली की अनुज्ञा दी गई थी ।

स्थानीय न्यायालयों में जाने की अनुज्ञा देने से इन्कार करने के लिए आधार के रूप में स्थानीय लोक नीति का परित्याग नहीं किया गया था किन्तु वह "अन्तर्निहित रूप से दूषित, अनैतिक और प्रवृत्त नैतिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने वाले" संव्यवहारों तक निर्बन्धित थी । इस विचार पर जोर दिया गया था कि इस प्रयोजन के लिए लोक नीति का न्यायालयों द्वारा कानूनों या संविधानों (पुस्तकांकित विधि) से इतना अधिक पता नहीं लगाया जाना है जितना कि वर्तमान में प्रवृत्त सामुदायिक प्रवृत्तियों से पता लगाया जाना है ।

अमरीकी मामले ।

17.10 लिबरमैन[5] के मामले में, न्यूयार्क के अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि न्यास व्यवस्था में इस आशय की शर्त की सुविधा पाने वाले व्यक्ति को, यदि वह न्यासियों की सहमति के बिना विवाह करे तो न्यास निधि के लिए अपना अधिकार खो देगा, लोक नीति के विरुद्ध थी ।

बिग कोटनवुड टैनर विच कंपनी बनाम मोइले[6] में ऊटा के सुप्रीम कोर्ट ने निम्नलिखित कथन किया था :—

"इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए कि ऊटा एक बंजर राज्य है और जल का परिरक्षण प्रथम महत्व रखता है यह बहुत संकोच के साथ कहा जाता है कि हम किसी ऐसे तर्क को स्वीकार करते हैं

1. ड्यूक आफ नारफोक का मामला, (1681) "पालिसी आफ दि किंगडम", च० केस 20, इनकन्वीनियेन्स," ।
2. लाउक्स बनाम स्टेण्डर्ड आयल कम्पनी, (1918) एन० वाई० 99, 111, 120, एन० ई० 198, 201, अमेरिकन कन्फिलक्ट आफ लाज में लेफलार द्वारा उद्धृत (1968) पृष्ठ 105 ।
3. मर्टज बनाम मर्टज, (1936) 271 एन० वाई० 466, 3 एन० ई० 2 डी० 597; 108 ए० एल० आर० 1120 (पति के विरुद्ध पत्नी द्वारा अपकृत्य कार्रवाई; न्यूयार्क ने प्रवर्तित करने से इंकार कर दिया । यद्यपि कनेक्टीकटयों जहां तथ्य घटित हुए थे, वाद हेतुक उत्पन्न होगा; जिसे लैफलार द्वारा अमेरिकन कान्फिलक्ट आफ लाज (1968) में पृष्ठ 15 पर उद्धृत किया गया है ।
4. इन्टरकान्टीनेन्टल होटल्स कारपोरेशन बनाम गोल्डन (1964) 15 एन० वाई० 2, 9, 13, 203 एन० ई० 2, 210, 212, 254, एन० वाई० एस० 2, 527, 529, (बहुमत विचार) लैफलार द्वारा अमरीकन कान्फिलक्ट आफ लाज में उद्धृत (1968), पृष्ठ 105.
5. लिबरमैन, (1939), 18 एन० ई० 2, 658, बोडेनहीमर की ज्यरिसप्रूडेंस में उद्धत, (1967), पृष्ठ 314।
6. बिग कोटनवुड टनर डिच कम्पनी बनाम मोइले, (1945) ऊटा 197, 203, जो बोडेनहीमर की ज्युरिसप्रूडेंस में (1968) पृष्ठ 314 पर उद्धृत है ।

जिससे कि जल को बचाना अधिक कठिन प्रतीत हो । हमेशा जल को नष्ट होने से बाचना इस राज्य की लोक नीति रही है" ।

17.11 ये मामले लोक नीति का विस्तार क्षेत्र और संयुक्त राज्य अमरीका में विभिन्न विचारणाओं पर दिए गए बल को दर्शित करेंगे ।

III. विधि वैषम्य--यूरोप में लोक नीति

विधि वैषम्य की बाबत यूरोप में लोकनीति ।

17.12 विधि वैषम्य के क्षेत्र में, यूरोप में लोक नीति का सिद्धांत अत्यधिक महत्वपूर्ण है । यह प्रतीत होता है कि इस शीर्षक के अधीन विदेशी विधिक नियमों के उपयोग को वहां वर्जित किया गया है, जहां ऐसा उपयोग उस स्थान के मूल नैतिक, सिद्धांतिक, सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक प्रतिमानों के प्रतिकूल है या जहां यह आवश्यक है कि देशीय विधि के नियम बिना शर्त के और पूर्णतया लागू किए जाने चाहिए या जहां विदेशी विधिक नियम का सिद्धांत राष्ट्रों की विधि के आज्ञापक नियमों या उस स्थल के राज्य की अंतर्राष्ट्रीय वचन बद्धताओं या न्याय की उन अपेक्षाओं का विरोधी है, जिन्हें साधारणतया अंतर्राष्ट्रीय विधिक समुदाय द्वारा मान्यता दी गई है ।

17.13 कदाचित् "लोक देश" का एक प्रारंभिक "कानूनी" रूप कानूनों को अप्रिय रूप से लागू करने से इन्कार करने में देखा जा सकता है और उसी के समान रूप ऐसी मर्यादित सार्वभौमिकता के विरुद्ध, जो केवल मात्र शिष्टाचार पर आधारित विधि वैषम्य में प्राप्त की जा सकती है, लोक आदेश के अधिभावी हित पर ह्यूबर को सतर्क और आनुषंगिक आस्था में देखा जा सकता है।[1] किन्तु केवल मैसोनी के सिद्धांत लोकादेश पर ध्यान[1] केन्द्रित करा सके थे ।

पूर्वी यूरोप से उदाहरण ।

17.14 **उदाहरण**[2] के लिए रूस के सिविल[3] कोड में यह उपबंधित किया गया है कि "विदेशी विधि लागू नहीं की जा सकती, यदि वह सोवियत पद्धति के आधारों के प्रतिकूल हो ।"

विवाह संबंधी हंगेरी की विधि[4] के अनुसार, विदेशी विधि स्वीकार नहीं की जा सकती, "यदि वह संविधान का या हंगेरी की विधि के उस नियम का अतिलंघन करती है जोकि पूर्ण उपयोजन पर जोर देती है"। आगे सिविल **प्रोसिजर**[5] की हंगेरी की विधि की अनुसार विदेशी न्यायालय के विनिश्चय को, हंगेरी में मान्यता नहीं दी जा सकती यदि वह मान्यता संविधान या हंगेरी की विधि के उस नियम का अतिलंघन करती है जोकि पूर्ण उपयोजन पर बल देता है ।

17.15 विलियम **बटलर**[6] द्वारा यह कथन किया गया है :---

"लोकादेश या लोक नीति की धारणा ने जिसे कि कामन ला देशों में कुछ संकीर्ण सिद्धांत जाना जाता है, महाद्वीपीय यूरोपीयन और आंगल-अमरीकी अधिकारिताओं में मौलिक सैद्धांतिक अनुबंधनों को जन्म नहीं दिया है, यद्यपि बहुत से न्यायविज्ञ उसके अपरिपक्व और संभाव्यतः असीमित क्षेत्र के बारे में आशंकित रहे हैं । किन्तु सोवियत न्यायविज्ञों को उस विदेशी विधि के उपयोजन का अपवर्जन करने का विकल्प" जो उस स्थान के न्याय और नैतिकता के अनि र्य सिद्धांतों से असंगत समझी गई हो, 1917 की क्रान्ति द्वारा किए गए सामाजिक और विधिक सुधारों को मान्यता देने से इन्कार करने के लिए, दर्जी के सिले हुए वस्त्रों के समान बनाया हुआ बहाना मात्र मालूम होता है । इस भय की फिर भी पुष्टि हुई प्रतीत होती है जब विशेष रूप से युद्ध की अवधि के दौरान, बहुत से पश्चिमी न्यायालयों ने सोवियत राष्ट्रीयकरण डिक्रियों को भागतः लोक नीति के आधार पर, राज्यक्षेत्रातीत प्रभाव देने से इन्कार कर दिया तो निसंदेह सोवियत न्यायालयों ने अपने लोकादेश के सिद्धांत की संरचना करके प्रतिशोध लिया होगा । किन्तु सोवियत रूस में न्यायाधीशों द्वारा बनाई गई विधि के प्रति घृणा है और लोक नीति को रिपोर्ट किए जाने वाले सोवियत विनिश्चयों में कदाचित् ही उद्धृत किया जाता है ।

1. एहरेनविग, कान्फिलक्ट आफ लाज, (1962), पृष्ठ 342 ।
2. रसियन फेडरेशन की सिविल कोड की धारा 568 (जून 11, 1964) ।
3. रूस के बारे में, पुनः आगे का पैरा 17.15 देखिए ।
4. 1952 को हंगेरियन डिक्री स० 23 की धारा 45, विवाह, कुटुम्ब के सम्बन्ध और सरक्षकता ।
5. 1952 की डिक्री स० 22 (कोड आफ सिविल प्रोसीजर) धारा 16 ।
6. विलियम बनाम बटलर (रीडर इन कम्पेरेटिव ला, यूनिवर्सिटी आफ लन्दन) बुक रिव्यू आफ आन्द्रे कार्नेफेस्को, सोवियत प्राइवेट इन्टरनेशनल ला में लोक नीति, (1970) (2 एडी० जिल्द 18, ए० जे० सी० एल० 604) ।

IV. फ्रांस की विधि

फ्रांस में लोकनीति।

17.16 फ्रांस की विधि में तत्स्थानी धारणा "लोकादेश" है। "लोकादेश" की धारणा को, प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि में, अत्यधिक वस्तुपरक "अंतर्राष्ट्रीय" दृष्टिकोण के अवांछित परिणामों का निवारण करने के लिए, लागू किया जाता है। प्रारंभ में यह कहा जा सकता है कि वहां विधि के चयन और अन्य सैद्धांतिक विषमताओं की पद्धति विद्यमान है (जिसे कि न्यूनाधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है)। किन्तु इस पद्धति की लोक नीति या "लोकादेश" द्वारा जांच की जानी होगी। इस जांच का प्रभाव विदेशी विधि के उपयोग का निवारण करना और फ्रांस की विधि को प्रतिस्थापित करना है।

लोक नीति के बारे में कहा जा सकता है कि वह प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि में दो रूपों में प्रवर्तित होती है[1]: (क) वह ऐसे विदेशी प्रतिषेधों की उपेक्षा कर सकती है जो स्थानीय विधि के लिए अप्रिय हैं[2]; (ख) वह ऐसी आपत्तियों और प्रतिषेधों का प्रारंभ कर सकती है जो, विदेशी अंतर्राष्ट्रीय विधि में न हों। उदाहरण (ख) के अनुसार यह कहा जा सकता है कि व्यवहार में, फ्रांस के न्यायालयों के समक्ष आने वाले मामले फ्रांस की विधि द्वारा विनिश्चित किए जा सकते हैं, चाहे पक्षकारों की स्वीय विधि किसी अन्य पद्धति से व्युत्पन्न हुई है। यह उस समय भी हो सकता है जब विदेशी समाधान नैतिकता या न्याय की फ्रांस की धारणाओं को आघात पहुंचाते हैं; उदाहरण के लिए, ऐसी विदेशी विधि को, जो भाई-बहन के विवाह की अनुज्ञा देती है या दासता को विधिक प्रास्थिति के रूप में मान्यता देती है, फ्रांस में मान्यता नहीं दी जाएगी।

फ्रांस के मामले।

17.17 विदेशी विवाह-विच्छेदों की अमान्यता के बारे में फ्रांस का विनिर्दिष्ट विनिर्णय "लोकादेश" के संदर्भ में उपलब्ध नहीं है। किन्तु यह प्रतीत होता है कि फ्रांस की पद्धति (i) उन मामलों के, जहां अधिकार विदेशियों द्वारा पहले ही अर्जित किए जा चुके हैं और प्रवर्तन या मान्यता की फ्रांस में मांग की गई है; और (ii) उन मामलों के, जहां वाद लाने वाला पक्षकार प्रत्यक्षतः विदेशी विधिक पद्धति के उपबंधों के अनुसार फ्रांस में अधिकारों का अर्जन करना चाहता है, बीच विभाजन करती है। पश्चात्वर्ती मामलों की अपेक्षा पूर्ववर्ती मामलों में फ्रांस के न्यायालय विदेशी निर्णय को विस्तृत मान्यता देने के लिए तैयार हैं।

इस प्रकार, यद्यपि फ्रांस के न्यायालय पक्षकारों की राष्ट्रिकता की विवाह-विच्छेद विधि को लागू करेंगे, तदपि "लोकादेश", फ्रांस के न्यायालय द्वारा उन आधारों पर डिक्री प्रदान करने की अनुज्ञा नहीं देगा, जो फ्रांस की देशीय विधि द्वारा अनुज्ञात नहीं है। किन्तु विदेशियों द्वारा विदेश में अभिप्राप्त की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री को फ्रांस में बनाए रखा जाएगा, चाहे विवाह-विच्छेद का आधार ऐसा आधार नहीं हो जिस पर फ्रांस के न्यायालय विवाह-विच्छेद प्रदान करें। पुनः, विवाह कर्म के संबंध में फ्रांस की विधि फ्रांस में विवाह करने वाले विदेशी राष्ट्रिकों को, उनकी अपनी देशीय विधि की प्रसुविधाओं का उपभोग करने के लिए अनुज्ञात करती है, सिवाय वहां के जहां विदेशी विधि महत्वपूर्ण सामाजिक धारणाओं की उपेक्षा करती हो उदाहरण के लिए, न्यूनतम आयु। आगे विदेशियों के बीच, विदेशी विधि के अनुसार विदेश में चाचा-भतीजी के बीच किया गया विवाह जो कि यदि फ्रांस में अनुष्ठापित किया गया हो तो केवल विशेष अभिमुक्ति द्वारा अनुज्ञात है, अभिमुक्ति के रक्षोपाय के बिना बनाए रखा जाएगा, किन्तु भाई और बहन के बीच विवाह सभी परिस्थितियों[3] में शून्य माना जाएगा।

फ्रांस का न्यायालय अभिकल्पित पिता को अपने बालक का अनुरक्षण करने के लिए आदेश देने वाले जर्मन निर्णय को इसलिए अस्वीकृत कर देगा क्योंकि वह "लोकादेश" के विरुद्ध है, और निर्णय का सिविल कोर्ट के अधीन पैतृकता के दावे को स्थापित करने के लिए उपयोग किया जा सकता है, जो कि अन्यथा नहीं किया जा सकता[4]।

V. कामन ला

विधि-वैषम्य के संबन्ध में कामन ला में लोक नीति।

17.18 कामन ला पद्धति में, लोक नीति की विधि-वैषम्य के क्षेत्र में अधिक सीमित भूमिका है। विवाह-विच्छेद की बाबत विधि के चयन की कोई समस्या नहीं है। इसके अतिरिक्त, यह भी कि उसमें सम्पूर्णतया

1. नियोबेट, ट्रैट डी ड्रियोइट इन्टरनेशनल प्राइवेट फ्रेंचाइज (जिल्द 5, 1948) धारा 1492 देखिए, (जिसे (1961) केन, बार रिव्यू 307 में निर्दिष्ट किया गया है।)
2. इंग्लिश विधि के बारे में सोटोम्बर बनाम डी० बारोज (नं० 2) (1879) 5 पी० डी० 94 देखिए।
3. लायड, लोक नीति (1953), पृष्ठ 80-82।
4. लायड, लोक नीति (1953) पृष्ठ, 96-97।

कार्य पद्धति पर उतना बल नहीं दिया गया है जितना कि फ्रांस की विधि[1] (और कुछ अन्य यूरोपीय पद्धतियों में) दिया गया है—जिनमें कि समस्या का विभाजन (क) वैषम्य-नियमों के उपयोजन, और (ख) लोक नीति के प्रभावों में किया गया है। यदि स्थानीय विधि को लागू नहीं किया जाता है, तो विधि-चयन निर्धारक, जो मान्यता की समस्याओं पर प्रभाव डालते हैं, निम्नलिखित हैं :—(i) स्वीय विधि, और (ii) "कार्य स्थान के अधीन है" वाला नियम[2]। स्वीय विधि बहुत से अधिकारक्षेत्रों में विवाह करने की सामर्थ्य के प्रश्न पर चर्चा करती है और न्यायालयों की सामान्य प्रवृत्ति, स्वीय विधि द्वारा उपदर्शित विदेशी विधि समाधान को केवल वहां अस्वीकार करने का है, जहां उसे मूल नैतिकता या सामाजिक धारणाओं से असंगत समझा गया हो। इस प्रकार, लोक नीति अंतिम उपचार है और इंग्लैण्ड के कुछ ऐसे मामले[3] हैं जिनमें उसे प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि के संदर्भ में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है।

17.19 एक शंका यह प्रकट की गई है कि क्या इसका अभिप्राय यह है कि कामन ला पद्धतियां विदेशी विधि की अंतर्वस्तु पर केवल आपवादिक परिस्थितियों में वहां विचार करती हैं, जहां विदेशी विधि उस स्थान की अत्यधिक महत्वपूर्ण अभिनिर्धारित नीतियों का अतिवर्तन करती है। कामन ला पद्धतियां

इस संदर्भ में, डूकर[4] ने प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि पर मास्को यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर लुन्ड द्वारा 1949 में प्रकाशित पुस्तक से इस आशय का कथन उद्धृत किया है कि एंग्लो-अमरीकन अधिकारिताओं में प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि "विधिक तकनीकी के उन साधनों में से एक है जो विदेशी विधियों के उपयोग को निर्बन्धित करने और देशीय विधि के क्षेत्र का विस्तार करने के लिए निदेशित है.......।"

इससे यह दर्शित होगा कि उद्दिष्ट लक्ष्य, यूरोप और कामन ला दोनों में एक ही है, यद्यपि लोक नीति के सिद्धांत के उपयोग के लिए विस्तार क्षेत्र, यूरोपीय देशों से कामन ला में अधिक सीमित है।

17.20 लोक नीति के बारे में, इंग्लैण्ड के रिपोर्ट किए गए मामले, विधि वैषम्य[5] के क्षेत्र में तुलनात्मक रूप से कम है। इंग्लैण्ड के अधिकांश ऐसे मामले जो कि[6] अभ्यासतः लोक नीति के पूर्वतन उपयोजन को साबित करने के लिए उद्धृत किए गए हैं, वास्तव[7] में प्रश्नगत[8] नहीं है। किन्तु इस सिद्धांत की तब तक न तो आवश्यकता थी और न कोई उपयोग था, जब तक कि अंतिम शताब्दी के अंत में, "निहित अधिकार" संबंधी सिद्धांत की स्थापना हुई थी। इंग्लैंड के मामले।

अन्य क्षेत्रों के समान इस क्षेत्र में, "लोक नीति" वहां सामने आई, जहां कामन ला दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं से[9] सम्पर्क रखने में असफल रहा।

1. ऊपर पैरा 17.3 देखिए।
2. (1961) केन० बार० रिव्यू 309।
3. उदाहरण के लिए निम्नलिखित देखिए—
   (क) पुघ बनाम पुघ (1951) प्रोबेट 482; (1951) 2 आल० ई० आर० 680 (विवाह करने की सामर्थ्य);
   (ख) पेने वाले मामले में (1940) अध्याय 1, 46; (विवाह करने की सामर्थ्य) टिप्पण के लिए 56 एल० क्यू० आर० 514 देखिए;
   (ग) ब्रुक बनाम ब्रुक (1861) 9 एच० एल० सी० 193 (विवाह करने की सामर्थ्य) (मृत पत्नी की बहन);
   (घ) मेट बनाम मेट (1859) एस० डब्ल्यू० और टी० आर० 416 (मृत पत्नी की अर्ध-रक्त बहन)।
4. डूकर इन (1955) 4 इन्ट० एण्ड कम्प० एल० क्यू० 386।
5. ऊपर पैरा 17.18 देखिए।
6. कटजेनबेच भी देखिए, कान्फिलक्ट आन एन अनरूली होर्स।
7. ऐहूरेण्डावे, विधि-संघर्ष (1962), पृष्ठ 342।
8. रोबिन्सन बनाम ब्लाण्ड 2 बुर 1077, 97, इंग्लिश रिपोर्ट 717 (1760) (दोनों विधियों के अधीन अप्रवर्तनीय संविदा) बुदब बनाम हण्ड्रिक्स, 2 बिंग 314 130, इंग्लिश रिपोर्ट 326 (1834) (संविदा को "राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध" अभिनिर्धारित किया गया क्योंकि वह मित्र सरकार के विरुद्ध निदेशित थी); सन्तोष बनाम इलिदगा 8 सी० बी० (एन० एस०) 861, 141 इंग्लिश रिपोर्ट 1404 (1860) (विदेशी संव्यवहार को लागू निबन्धनों में कानून का निर्वचन); केल बनाम लेबी, 16 सी० बी० (एन० एच०) 73, 143 इंग्लिश रिपोर्ट 1052 (1864) (इंग्लैंड में पूरी की जाने वाली संविदाएं) ओनली होप बनाम होप 8 डी० जी० एम० एण्ड जी० 731, 743, 44 इंग्लिश रिपोर्ट, 572, 576 (1857) उस स्थान की "नीति" पर आधारित थी।
9. होल्ड्सवर्थ, ए हिस्ट्री आफ इंग्लिश ला (1926), जिल्द 8 पृष्ठ 56।

लोकनीति के लिए विकल्प—स्टोरी का दृष्टिकोण।

17.21 1827 में, लुइसियाना न्यायालय ने टिप्पणी की "कि विधि वैषम्य में बहुधा यह संदेह का विषय होता है कि कौनसी (विधि) अभिभावी होनी चाहिए और जब कभी वह संदेह विद्यमान होता है, तो वह न्यायालय, को विनिश्चय करता है, अपने स्वयं के आदेश की विधि को, परदेश[1] की विधि से अधिमान देता है।" स्टोरी ने इस कथन में "बड़ा सच" पाया और उसने लोक नीति के "अपवाद" का आश्रय लिए बिना, अपने विश्लेषण[2] के वस्तुतः प्रत्येक अध्याय में यही संदेश दिया।

केवल उन थोड़े से क्षेत्रों में, जिनमें पिछली शताब्दियों में, उन नियमों के सदृश्य नियम बनाए गए थे, "जिनसे राष्ट्र नैतिक रूप से या राजनीतिक रूप से बंधे[3] होते हैं। इसकी आवश्यकता थी, किन्तु फिर भी उसके कार्य में अपवाद[4] के लिए स्थान था।

चैशायर द्वारा वर्गीकरण

17.22 चैशायर ने अपनी पुस्तक "प्राइवेट इन्टरनेशनल लॉ" के किसी पूर्वतर संस्करण[5] में, लोक नीति पर इंग्लैण्ड के मामलों को चार वर्गों में विभाजित किया था, अर्थात् :—

(1) जहां इंग्लैण्ड के न्याय की मूल धारणाओं की उपेक्षा की जाती है ; उदाहरण के लिए जहां किसी पक्षकार को उचित सुनवाई का अवसर देने से वंचित किया गया है या जहां कपट, असम्यक् असर या बाध्यता है, जैसा कि काफ मैन बनाम गरसन वाले[6] मामले में था।

(2) जहां नैतिकता की इंग्लैण्ड की धारणाओं का अतिलंघन[7] किया जाता है। यह प्रत्यक्ष रूप से यौन अनैतिकता तक सीमित है।

(3) जहां संव्यवहार यूनाइटिड किंगडम के और विदेशी शक्तियों के साथ उसके संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला है, संबंधों के अन्तर्गत विदेशी[8] शत्रुओं से संबंध अंतर्वलित करने वाले करार, या विदेश[9] में और विद्रोह करने के लिए करार या विदेशी प्रतिषेध विधियों[10] के विरुद्ध शराब का आयात करने के लिए करार हैं। उद्धृत किए गए मामले इंग्लैण्ड की संविदाओं से संबंधित थे। किन्तु यह हो सकता है कि आंतरिक लोक नीति का नियम संभावतया विदेशी विधि द्वारा शासित वैसी ही संविधाओं के मामले में बाहर भी लागू हो।

(4) जहां विदेशी प्रास्थिति मानवीय स्वतंत्रता और कार्रवाई की स्वतंत्रता की इंग्लैण्ड की धारणा को आघात पहुंचाती है; अर्थात् दासता से सम्बन्धित संविदा या फ्रांस की विधि[11] में 'प्रोडिगल' की प्रास्थिति या विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा अंतिम रूप से विवाह विघटित कर दिए जाने के पश्चात् पुनर्विवाह का प्रतिषेध करने वाला विदेशी नियम।

लायड[12] के अनुसार, अन्त में वर्णित वर्ग के बारे में ऐसा प्रतीत होता है कि वह वैयक्तिक स्वतंत्रता के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड की लोक नीति का उदाहरण मात्र है और संभवतया ऐसी अन्य स्वतंत्रताओं को, जैसे व्यवसाय

1. सील बनाम हिव क्रेडिटर्स मार्टिन आर० (एन० एस०) 569, 595 (ला 1827)।
2. स्टोरी 29।
3. स्टोरी 71।
4. इस प्रकार स्टोरी का विश्वास था कि "राष्ट्रों की साधारण विधि द्वारा 'जूरेंजेन्टियम' (उस स्थान की विधि के अधीन जहां वह की गई है, विधिमान्य संविदा) को प्रत्येक स्थान पर विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाता है स्टोरी 201 इस (गलत) धारना के परिणाम सही करने के लिए स्थानीय विधि "अच्छी नैतिकता या क्षेत्रीय लोक अधिकारों के विरुद्ध" संविदाओं के बारे में पुनः संविदा करती है; ईद; 213 विवाह संविदाओं के बारे में भी देखिए, पृष्ठ 104 पर।
5. चैसायर, प्राइवेट इन्टरनेशनल ला (1952), पृष्ठ 145–9, जो लिलियड द्वारा चैसायर की पब्लिक पोलिसी (1953) 1975 में, पृष्ठ 152 से 155 तक में उद्धृत किए गए हैं।
6. काफमैन बनाम गरसन, (1904) 1 के० बी० 591।
7. रोबिंसन बनाम ब्लाण्ड, (1760) 2 बुर 1077, 1084।
8. डायनामिट ए० जी० बनाम रियो टिन्टो (1918), अपील केसेज 292।
9. डी विट्ज बनाम नेड्रिक्स, (1824) 2 बिम्ब, 314।
10. फोस्टर बनाम क्रिस्टल (1929) 1 के० बी० 470।
11. (क) बर्मस बनाम डी काल्डर, (1880) 49 एल० जे० (ज) 261;
(ख) रिसिलोट्स ट्रस्ट्स (1902) अध्याय 1—488।
12. लायड पब्लिक पालिसी (1953), पृष्ठ 95।

की स्वतन्त्रता (जिसको कि संरक्षण[1] देना कामन ला अपनी सुनिश्चित नीति मानता है) उसके अन्तर्गत लाने के लिए उसका विस्तार किए जाने की आवश्यकता है।

लोक नीति और विबाध्यता।

17.23 लोक नीति विबाध्यता के बारे में चर्चा करने के लिए उपयोगी विषय हो सकता है। यदि पट को दूषित करने वाला कारण माना जाता है तो विबाध्यता को भी उसी प्रकार माना जाना चाहिए। यदि किसी पक्षकार की इच्छा की स्वतंत्रता विबाध है तो उपयोग किए गए साधनों का महत्व नहीं होना चाहिए। यह भी महत्वहीन होना चाहिए कि दूषित करने वाला तत्व प्रत्यक्षतः पक्षकार पर प्रवर्तित था या उसने अप्रत्यक्षतः कार्य किया था। दूसरे संदर्भ[2] में, लार्ड डेलविन ने यह मत व्यक्त किया था "लाक्षणिक दृष्टि से वादी के लिए जो भी महत्वपूर्ण होता है वह यह है कि एक डंडे का प्रयोग किया गया है। वादी के लिए यह महत्वहीन है कि वह डंडा किससे बना हुआ है--वह भौतिक डंडा है या आर्थिक डंडा है, अपकृत्यक डंडा है या अन्यथा अवैध डंडा है।

विवाह के सम्बन्ध में विबाध्यता।

17.24 हम विबाध्यता निर्दशित करने वाले मामले के प्रति निर्देश करें। जैक्टर बनाम जैक्टर[3] में, अर्जीदार ने वास्तविक भयावह दशाओं में और कारावास एवं पागलखाने के भय से और कारावास के कठोर दंडादेश से बचने के लिए विवाह के लिए सहमति दी थी; उन परिस्थितियों का करीब-करीब परिणाम निश्चित रूप से पुनः गिरफ्तारी और हर हालत में भविष्य में गरीबी, मानसिक प्रकृति के नियोजन से अन्यथा कोई नियोजन प्राप्त करने में असमर्थता और कभी भी सामान्य जीवन बिताने में असमर्थता में होता। प्रेसिडेन्ट सर जासलिन साइमन ने अकृतता की डिक्री देने के कारणों का उल्लेख करते हुए कहा था--

"मेरी दृष्टि में अन्यथा वैध विवाह को अविधिमान्य बनाने के लिए यह अपर्याप्त है कि किसी पक्षकार ने वह विवाह अप्रिय परिस्थिति से बचने के लिए (जैसे गरीबी या सामाजिक अपमान से बचने के लिए) किया है। किसी अन्यथा विधिमान्य विवाह को दूषित करने के लिए विबाध्यता की अड़चन के लिए, मेरी विवेकबुद्धि के अनुसार, यह अवश्य साबित किया जाना चाहिए कि उसके पक्षकारों में से एक की इच्छा को जीवन, अंग या स्वतंत्रता के प्रति आसन्न खतरे के डर से (जिसके लिए पक्षकार स्वयं उत्तरदायी नहीं हैं) कारित वास्तविक और युक्तियुक्त भय से दबाया गया है, जिससे कि मजबूरी साधारण विवाह के लिए सहमति की वास्तविकता को नष्ट कर देती है।"

उन्होंने आगे यह भी कहा कि किसी धमकी के आसन्न विनिर्दिष्ट धमकी गठित होने के लिए, "यदि लगातार खतरा विद्यमान है, तो यही पर्याप्त है, यद्यपि हो सकता है कि आशंकित मृत्यु, क्षति या स्वतंत्रता से वंचित किया जाना, भविष्य में अज्ञात समय तक नहीं भी हो। इसी प्रकार, मेरी विवेकबुद्धि के अनुसार, यद्यपि मात्र गरीबी या सामाजिक अपमान ही अन्यथा वैध विवाह को अविधिमान्य नहीं बनाएंगे, किन्तु यदि वे जीवन, अंग या स्वतंत्रता के लिए खतरे के आवश्यक तत्व बन जाते हैं तो उनकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती"।

विघटन के सम्बन्ध में विबाध्यता।

17.25 मेयर[4] के मामले में न्या० बैगनेल ने जेक्टर बनाम जेक्टर पर चर्चा करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया था:--

"तब, विबाध्यता का सिद्धान्त विवाह की संविदा को लागू होता है; क्या वह विवाह के विघटन को भी लागू होता है? यदि यह प्रश्न विवाह की उस पद्धति के संबंध में उठा है, जिसने कि विवाह-विच्छेद को सम्मति द्वारा मान्यता दी है, तो मुझे इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि यह सिद्धान्त लागू होगा। क्योंकि, जैसा कि विवाह में होता है, इसमें भी विशेष प्रकार की संविदात्मक व्यवस्था होगी, जो कि प्रास्थिति में परिवर्तन कर देगी। किन्तु, यह सिद्धान्त उन कार्यों तक सीमित नहीं है जो कि संविदात्मक या द्विपक्षीय या बहुपक्षीय होते हैं, यह विल करने को लागू होता है और यह जीवित दशा में स्वैच्छिक व्ययन को लागू होता है। मुझे इस तर्क में या इस सिद्धान्त में कोई ऐसा कारण नहीं दिखाई पड़ता है कि उसे विबाध्यता से, अभिप्राप्त की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री को लागू क्यों नहीं होना चाहिए, जहां कि इंग्लैण्ड का न्यायालय दूसरे न्यायालय द्वारा प्रदान की गई डिक्री का विचार कर रहा

1. (क) रोसीलन बनाम रोसीलन, (1880) अध्याय 14 डी० 351।
(ख) वार्नर बनाम हैक्सन, (1937) 1 के० बी० 209।
2. रूक बनाम बर्नार्ड, (1964) अपील केसेज 1129, 1209 लार्ड डेवलिन के अनुसार)।
3. जेक्टर बनाम जेक्टर (1971) 2, डब्ल्यू० एल० आर० 170, 180।
4. मेयर, (1971) 2 डब्ल्यू० एल० आर० 401, 407, 408 में (न्यायाधीश बैगनेल)।

है । यह भी हो सकता है कि यदि इंग्लैण्ड का कोई न्यायालय इंग्लैंड के किसी न्यायालय द्वारा सुनाई गई डिक्री पर विचार कर रहा है तो वहां भिन्न तर्क लागू होंगे। किन्तु हमारा उस स्थिति से संबन्ध नहीं हैं।

"मैं आगे यह कहना चाहूंगा कि बुरका बनाम बुरका[1] में न्या० वर्गनार्ट की उस इतरोक्ति द्वारा मेरी राय की पुष्टि होती है जिसकी संक्षेप में रिपोर्ट 17 मार्च 1955 के "टाइम्स" में दी गई थी। उक्त मामले में यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् कि वह विवाह जो रूस में किया गया था अविधि-मान्य था, न्यायाधीश ने आगे यह कहा था कि यदि विवाह विधिमान्य रहा होता तो उसने यह अभिनिर्धारित किया होता कि रूस में अभिप्राप्त की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री उसका विघटन करने के लिए अप्रभावी हुई होती, क्योंकि पत्नी को "विवाह-विच्छेद अभिप्राप्त करने के लिए उत्पीड़ित किया जा रहा था और उस पर जुल्म किया जा रहा था"। फाइल से, जिसकी मैंने परीक्षा की है, यह मालूम होता है कि रूसी पत्नी और उसकी मां को, यदि वह विवाह-विच्छेद अभिप्राप्त नहीं करती है तो कारा-वास की धमकी दी जा रही थी।"

अन्तिम आधार के रूप में लोकनीति ।

17.26 भारत, इंग्लैंड, अमरीका और अन्य देशों में साधारणतया वे नियम सुविदित हैं जो कि असम्यक् असर ब्लेकमेल द्वारा भयादोहन या वैयक्तिक स्वतंत्रता पर अत्यधिक निर्बन्धन से व्यक्ति को संरक्षण देते हैं। इन नियमों को सद्भाव और शिष्टता की विशेष अभिव्यक्ति माना जा सकता है । किन्तु, अंतिम विश्लेषण में उन्हें लोक नीति के सिद्धान्त के उपयोग के रूप में भी माना जा सकता है । निःसंदेह इस सिद्धान्त का उपयोग समय-समय पर और स्थान-स्थान पर और न्यायाधीश की न्यायबुद्धि के अनुसार भी भिन्न-भिन्न रहा है ।

इसके अतिरिक्त एक मूल्यवान निर्णय अन्तर्वलित है जो कि विधि के शाब्दिक पाठ से ऊपर है, किन्तु साधारणतया इसके उपयोग का तर्काधार यह है कि विदेशी विधिक उपबन्ध, जिसे कि अन्यथा विधि वैषम्य से संबन्धित नियमों के अधीन लागू माना जाता है, स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि वह आन्तरिक विधि व्यवस्था में, स्पष्ट या विवक्षित मूल्यों से असंगत हैं।

अन्यत्र सिद्धान्त ।

17.27 इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि लोक नीति का सिद्धान्त यूरोपीय देशों तक सीमित नहीं हैं और ऐसे ही सिद्धान्त बहुत से अन्य देशों में भी पाए जाते हैं, उदाहरण के लिए अर्जेनटाइना,[2] ब्राजील[3] और मैक्सिको[4]। इस सिद्धान्त का उपयोग निर्णयों को मान्यता दी जाने तक सीमित नहीं है । यह सिद्धान्त उन कार्य-वाहियों के संबन्ध में, जो विदेश में की जा रही हैं या समाप्त हो गई हैं, और कतिपय अन्य प्रक्रियात्मक मामलों के संबन्ध में भी सुसंगत है ।

VI. इंग्लैंड में कानूनी उपबंध

इंग्लैंड का ऐक्ट ।

17.28 विदेशी विवाह-विच्छेदों और पृथक्करणों की मान्यता के बारे में हाल ही का इंग्लैण्ड का ऐक्ट, इंग्लैण्ड के न्यायालयों को लोक नीति[5] के आधार पर मान्यता देने से इंकार करने के लिए अनुज्ञात करता है ।

VII. निष्कर्ष

निष्कर्ष ।

17.29 इस विषय के सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए हमारा विचार है कि लोक नीति के विषय पर एक साधारण उपबन्ध अंतःस्थापित किया जाना चाहिए ।

---

1. बुरका बनाम बुरका (रिपोर्ट न की गई) ।
2. अर्जेनटाइना फेडरल कोड आफ सिविल प्रोसीजर, धारा 599 ।
3. ब्राजीलियन कोड आफ सिविल प्रोसीजर धारा 792 ।
4. मैक्सिकन कोड आफ सिविल प्रोसीजर धारा 785 ।
5. इंग्लिश ऐक्ट, 1971 की धारा 8(2) (ख) ।

अध्याय 18

कपट

I. प्रारम्भिक

18.1 ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह-विच्छेद और विधिक पृथक्करण की डिक्रियों के अमान्य किए जाने के आधार के रूप में, ऐसा विषय है जिसका अपना महत्व है। प्रारम्भिक।

विवाह-विच्छेद की विदेशी डिक्रियों की मान्यता के संदर्भ में इस विषय पर विचार किया जाने का महत्व स्पष्ट हैं। एक ओर, अन्य देशों की न्यायिक प्रक्रिया में विश्वास रखा जाना चाहिए और इस साधारण नियम से बार-बार विसरण के परिणामस्वरूप पंगु विवाहों का सृजन होगा। दूसरी ओर, ऐसी विशेष परिस्थितियां हैं जिनका ध्यान रखा जाना चाहिए। यही वह उदार विचारण है जो कि कपट के अपवाद के मूल में है।

18.2 हम यह उल्लेख कर दें कि कपट के दो प्रवर्ग हैं:--(i) मामले के गुणागुण के बारे में कपट; और (ii) न्यायालय की अधिकारिता के बारे में कपट। साधारणतया, प्रथम प्रवर्ग के कपट का भारतीय न्यायालयों द्वारा, जब वे विशिष्टतया विदेशी निर्णयों की या साधारण निर्णयों की विधिमान्यता के प्रश्नास्पद किए जाने के सम्बन्ध में विनिर्दिष्ट कानूनी उपबन्धों[1] द्वारा परिरक्षित शक्ति का प्रयोग कर रहे होते हैं, ध्यान नहीं रखा जाता है। विवाह विषयक क्षेत्र में भी बहुधा मामले कपट के दूसरे प्रवर्ग से सम्बन्धित होते हैं। दो प्रकार का कपट।

संयुक्त राज्य अमरीका में, यह कहा जाता है कि न्यायालय केवल उस कपट पर विचार करेंगे जो कि किसी न्यायालय की अधिकारिता से वंचित करता है, जैसे कपट द्वारा अभिप्राप्त की गई आदेशिका की तामील। वह कपट, जिसके लिए साम्यिक अनुतोष (जिसे कि बहुधा बाह्य कपट कहा जाता है) दिया जा सकता है, किसी न्यायालय को अधिकारिता से वंचित नहीं करता। अतः यह कहा गया है कि[2] किसी निर्णय पर आक्षेप करने के लिए वास्तविक आधार अधिकारिता का अभाव है, कपट तो केवल उसका कारण हो सकता है। हमें इस दृष्टिकोण पर कोई राय प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। बहरहाल यदि यह दृष्टिकोण सही है तो यह आपत्ति के आधार के रूप में कपट को मान्यता दी जाने की आवश्यकता में वृद्धि करता है।

II. भारतीय विधि

18.3 भारतीय विधि के प्रतिनिर्देश से सर्वप्रथम हम साधारणतया निर्णयों पर पड़ने वाले कपट के प्रभाव की परीक्षा करेंगे। भारत में यह सुस्थापित है कि किसी निर्णय की विधिमान्यता पर कपट के आधार पर आपत्ति की जा सकती है। अहमद भाई के मामले[3] में मुम्बई उच्च न्यायालय ने निर्णयों को प्रभावित करने वाले कपट के प्रश्न पर इंगलैण्ड की विधि के साधारण आधारों पर निम्नलिखित तीन वर्गों के व्यक्तियों के प्रति निर्देश से विस्तारपूर्वक विचार किया था, अर्थात्:--- निर्णयों में कपट का प्रभाव मुम्बई वाले मामले में विभिन्न स्थितियों का विश्लेषण।

(क) संसर्गी;

(ख) वे व्यक्ति, जो यद्यपि संसर्गी नहीं थे, तो भी जिनका कार्यवाहियों में प्रतिनिधित्व था;

(ग) पर व्यक्ति।

"उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था---

"प्रथमतः तो निर्णय, वादी और प्रतिवादी दोनों की ओर से सद्भावपूर्वक संचालित वाद" में अभिप्राप्त किया गया सद्भाविक निर्णय हो सकता है ऐसी दशा में पूर्व निर्णय वर्ग (क) और वर्ग (ख) दोनों पर स्पष्ट रूप से आबद्धकर है; वर्ग (ग) पर निर्णय का, यदि वह पक्षकारों के बीच है, किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं

1. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13, और साक्ष्य अधिनियम की धारा 41।
2. देखिए (क) टिप्पण, फारेन जजमेन्ट्स और रेस ज्यूडिकेटा (1928) 41 हार्व० एल० आर० 1955 और (ख) डवलपमेन्ट्स---रेस ज्यूडिकेटा (1952) 65 हार्व० एल० आर० 818, 851।
3. अहमद भाई बनाम रबी भाई, (1882) आई० एल० आर० 6 मुम्बई 703।

पड़ेगा, किन्तु यदि वह सक्षम न्यायालय द्वारा पारित सर्वबन्धी निर्णय है तो ये उसके द्वारा आबद्ध होंगे और उसकी बाबत संविवाद नहीं कर सकेंगे। दूसरे, निर्णय, वाद के पक्षकारों द्वारा वाद में वास्तव में प्रतिवादित किए गए वाद में पारित हो सकता है किन्तु वह उनमें से एक के द्वारा दूसरे के विरुद्ध कपट से अभिप्राप्त किया जा सकता है । झगड़ा वास्तविक हो सकता है किन्तु विजय अनुचित साधनों से प्राप्त की जा सकती है। इस दशा में, पुनः वर्ग (क) और वर्ग (ख) और जहां तक सर्वबन्धी निर्णयों का संबंध है वर्ग (ग) एक हो और उसी स्थिति में हैं, जोकि पक्षकारों की स्वयं की है । निर्णय उन पर वहां तक आबद्धकर है जहां तक कि वह प्रवर्तित रहता है, किन्तु उसको कपट के लिए अधिक्षेपित किया जा सकता है और यदि कपट साबित हो जाता है तो उसे अपास्त किया जा सकता है । तीसरे, यह हो सकता है पूर्व निर्णय कपट द्वारा और पूर्ववर्ती वाद के दोनों पक्षकारों को दुरभिसंधि से अभिप्राप्त किया गया हो। इस मामले में कोई झगड़ा नहीं रहा है किन्तु दिखावटी लड़ाई रही है। ऐसे निर्णय के पक्षकारों के बीच यह आबद्धकर है । यही नियम उन पक्षकारों के संसर्गियों के बीच लागू होगा, सिवाए वहां के जहां कि संभवतया ऐसे संसर्गियों की असुविधा के लिए अधिनियमित विधि के उपबन्ध के संबंध में दुरसंधिपूर्ण कपट रहा है ।

हमने यह अंश निर्णय की विधिमान्यता को प्रभावित करने वाले कपट के संबंध में भारत में न्यायालयों द्वारा अपनाए गए साधारण दृष्टिकोण को संदर्शित करने के लिए उद्धृत किया है ।

एक पक्षीय डिक्रिया ।

18.4 इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि ये सिद्धान्त वहां भी लागू होते हैं जहां प्रक्रिया संबंधी विधि, कपट की विशिष्ट किस्मों के बारे में अन्य उपाय अनुज्ञात करती है । इस प्रकार एकपक्षीय डिक्री के मामले में प्रतिवादी कपट के आधार पर उसे अपास्त कराने के लिए वाद फाइल कर सकता है, भले ही वह उसे सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908[1] के आदेश 19 के नियम 13 के अधीन अपास्त कराने में असफल रहा हो। दोनों उपचार सुभिन्न हैं। आदेश 9 के नियम 13 के अधीन उपचार संक्षिप्त उपचार है । कपट के बारे में वाद वास्तव में ईक्विटी बिल[2] का तुल्यरूप है।

न्यायालय की शक्ति ।

18.5 उन डिक्रियों को, जो कि कपट द्वारा अभिप्राप्त की गई हैं, अकृत मानने की न्यायालय की शक्तियों से सम्बन्धित प्रश्न पर प्रमाणों का स्टोनली ने निस्तरनी दासी बनाम नन्द लाल बोस[3] के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की आरंभिक अधिकारिता में के निर्णय में, विस्तार से पुनर्विलोकन किया है । पश्चात्वर्ती राजिब पंडा बनाम लखन सेंध महापात्री[4] के मामले में भी साक्ष्य अधिनियम की धारा 44 के सही अभिप्राय और प्रभाव के बारे में विचार किया गया था।

कपट का निर्णय के लिए प्रतिरक्षा के रूप में होना ।

18.6 कपट, आपत्ति का आधार बनाए जाने के अतिरिक्त प्रतिरक्षा का आधार भी हो सकता है । जब किसी अस्तित्वयुक्त निर्णय, आदेश या डिक्री को, जोकि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 40, 41, या 42 के अधीन सुसंगत है, वाद के एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के दावे के लिए वर्जन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो उस पक्षकार को, जिसके विरुद्ध ऐसा निर्णय, आदेश या डिक्री प्रस्तुत की गई है, उसके अपास्त कराने के लिए पृथक् वाद लाना आवश्यक नहीं होता है, किन्तु ऐसा पक्षकार उसी वाद में, जिसमें ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री का उसके विरुद्ध प्रयोग करना अपेक्षित है, यह दर्शित करने के लिए स्वतंत्र होगा कि, यदि ऐसी स्थिति है तो वह निर्णय, आदेश या डिक्री, जिसका दूसरे पक्षकार द्वारा आश्रय लिया गया था, ऐसे न्यायालय द्वारा प्रदान की गई थी, उसका परिदान करने के लिए सक्षम नहीं था या वह कपट[5] द्वारा अभिप्राप्त की गई थी।

भारत में विधायी दृष्टिकोण—धारा 13 सिविल प्रक्रिया संहिता और धारा 44, साक्ष्य अधिनियम ।

18.7 ये सिद्धान्त भारतीय न्यायालयों के निर्णयों तक सीमित नहीं हैं ; वे समान रूप से विदेशी निर्णयों को भी लागू हैं। हम इस संबन्ध में उल्लेख कर सकते हैं कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13, जिसके प्रति हम विदेशी निर्णयों की मान्यता के बारे में भारतीय विधि की साधारण चर्चा के दौरान पहले ही निर्देश[6] कर चुके हैं, विनिर्दिष्ट रूप से कपट का, उन परिस्थितियों की गणना करते समय, जिनमें विदेशी निर्णय

1. राधारमन बनाम प्रान नाथ, आई० एल० आर० 28 कलकत्ता 475 (पी० सी०) ।
2. वेट बनाम पालमर, डब्ल्यू० एन० (20 मई, 1899), पृष्ठ 74 जो निसतारिनी देसाई बनाम नन्दलाल बोस, आई० एल० आर० 26 कलकत्ता 891, 915 में निर्दिष्ट किया गया है ।
3. निस्तरनी दासी बनाम नन्द लाल बोस, (1899) आई० एल० आर० 26 कलकत्ता 891, 907 से 910 ।
4. राजिब पंडा बनाम लखन सेंध महापात्री, 1899 आई० एल० आर० 27, काल० 11, 15, 21 (मु० न्या० मेलियन और न्या० बनर्जी) ।
5. बंसी लाल बनाम धापो, (1902) आई० एल० आर० 24 आल 242, 247 (मुख्य न्यायाधीश स्टेनले और न्यायाधीश बर्किट।
6. ऊपर अध्याय 4 देखिए ।

निश्चायक सबूत नहीं है, वर्णन करती है। इसी प्रकार भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 44, कतिपय निर्णयों की सुसंगतता के लिए उपबन्ध करते हुए, स्पष्ट रूप से किसी निर्णय पर भले ही वह अन्यथा सुसंगत हो, कपट के आधार पर[1] आपत्ति करने की अनुज्ञा देती है। साक्ष्य अधिनियम का यह उपबन्ध उस अधिनियम की धारा 41 में उल्लिखित निर्णयों को भी लागू होता है, अर्थात् प्रास्थिति को प्रभावित करने वाले कतिपय निर्णय। ये कानूनी उपबन्ध भारत में इस कामन ला सिद्धान्त की विधायी मान्यता दी जाने का पर्याप्त संकेत करते हैं कि किसी निर्णय को विधिमान्यता को कपट के आधार पर प्रश्नगत किया जा सकता है।

18.8 वर्तमान प्रयोजन के लिए, हमें इस सिद्धान्त की निश्चित सीमाओं पर या उस उचित प्रक्रिया पर, जिसको इस न्यायालय की अधिकारिता का उपयोग करने के लिए अपनाया जाना चाहिए, चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु कतिपय महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख करना वांछनीय है और हम कपट के विषय पर इंगलैंड की विधि के बारे में चर्चा करने के पश्चात् इन बातों पर विचार करेंगे।

III इंगलैंड की विधि

18.8क इंगलैंड में यह साधारण सिद्धान्त कि निर्णय की विधिमान्यता पर कपट के आधार पर[2] आपत्ति की जा सकती है, स्वीकार किया जाता है। उदाहरण के लिए, को बनाम लेंगफोर्ड[3] में, यह विनिश्चय किया गया था कि जहां निर्णय कपट द्वारा अभिप्राप्त किया गया है, वहां न्यायालय को, उस प्रयोजन के लिए की गई पश्चातवर्ती कार्यवाही में निर्णय को अपास्त करने की अधिकारिता होगी। *इंगलैंड में कपट जो साधारणतया निर्णयों को प्रभावित करता है।*

जोनेस्को बनाम बियर्ड[4] में लार्ड बकमास्टर द्वारा यह कथन किया गया था--

> "न्यायालय की यह दीर्घकाल से तय पाई गई पद्धति है कि किसी पूर्ण निर्णय को कपट के आधार पर अधिक्षेपित करने की उचित पद्धति वह कार्यवाही है जिसमें जैसा कि कपट पर आधारित किसी अन्य कार्यवाही में होता है, कपट की विशिष्टियां यथावत् दी जानी चाहिए और अभिकथन को उस ठोस सबूत द्वारा, जिसकी कि ऐसा आरोप, अपेक्षा करता है, साबित किया जाना चाहिए।"

18.9 कभी-कभी यह कहा जाता है कि इंगलैंड में, कपट का लाभ निर्णय के केवल ऐसे पर व्यक्ति द्वारा लिया जा सकता है, जो कपट में संसर्गी नहीं है। इसका तर्क यह है कि कार्यवाहियों का पक्षकार निर्णय को रद्द कराने के लिए आवेदन कर सकता था। इस बाबत प्रतिपादित सिद्धान्त यह है कि (i) कोई पक्षकार, यदि दोषी है तो अपनी स्वयं की गलती का लाभ नहीं उठा सकता, और (ii) कोई पक्षकार, यदि निर्दोष हो, तो उसे अपील के रूप में उपचार के लिए कार्यवाही करनी चाहिए थी। किन्तु इस विषय पर स्थितिपूर्ण रूप से संदेहातीत[5] नहीं है। कुछ भी हो जहां तक कपट के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री को चुनौती देने का संबंध है, ऐसा प्रतीत होता है कि इंगलैंड के न्यायालयों में इस विषय पर उदार दृष्टिकोण अपनाया गया[6] है और डिक्री के किसी पक्षकार को अनुतोष[7] का दावा करने से विवर्जित नहीं माना गया है। *क्या उपचार परव्यक्तियों तक सीमित है।*

18.10 भारत में यह सुस्थापित है कि विदेशी निर्णयों को कपट[8, 9, 10, 11, 12, 13], के आधार पर अधिक्षेपित नहीं किया जा सकता, जहां तक कि वह विदेशी न्यायालय की अधिकारिता पर प्रभाव डालता है। *विदेशी निर्णय के बारे में इंगलैंड में स्थिति।*

1. आगे पैरा 18.8 से 18.10 तक देखिए।
2. डेविड कनेडी बनाम डेनग्रेड (1943) 2 आल इंग्लैंड रिपोर्टस 606।
3. को बनाम लेंगफोर्ड (1893) 2 क्यू० बी० 376।
4. जोनेस्को बनाम बियर्ड, (1930) अपील केसेज, 298, 300।
5. डी० एम० गोरडन-- एक्शन्स टू सेट एसाइड जजमेन्ट्स (1961) 73 ए० क्यू० आर० 533 देखिए।
6. बोनापार्ट बनाम बोनापार्ट (1892) प्रोबेट 402।
7. ऊपर पैरा 18.7 और आगे पैरा 18.13 देखिए।
8. अबुलाफ बनाम आपेनहोमेर, (1882) 10 क्वीन्स बैंच डिवीजन 295।
9. वादला बनाम वावेस, (1890) 25 क्वीन्स बैंच डिवीजन 310।
10. गोड बनाम डेलन, (1905) 92 ला टाइम्स 510।
11. हिप फूग होंग बनाम नियोटिया, (1918) अपील केसेज 888 (प्रिवी काउसिल)।
12. एलरमन लाइन्स बनाम रीड, (1928) 2 किंग्स बैंच 144।
13. स्याल बनाम हेवर्ड, (1948) 2 आल० ई० आर० 576 (सी० ए०)।

विवाह-विच्छेद।

18.11 यह बताना प्रसंगानुकूल है कि इंगलैंड की विधि में इस बात से इंकार नहीं किया गया है, कपट विवाह-विच्छेद[1] की विदेशी डिक्री को मान्यता न देने के लिए विधिमान्य आधार है। विदेशी न्यायालय द्वारा विनिश्चित मामले के गुणागुणों के बारे में कपट की मामूली तौर से इंगलैंड में उपेक्षा की जाएगी, किन्तु विदेशी निर्णय की अधिकारिता के बारे में कपट को ध्यान में रखा[2] जाएगा। मिडिलटन बनाम मिडिलटन में इस विषय के दोनों पहलुओं के बारे में चर्चा की गई थी। उस मामले में, पति ने दो झूठे अभिकथन करके इलिनोइस (संयुक्त राज्य अमरीका) के राज्य में, विवाह-विच्छेद की डिक्री अभिप्राप्त की थी: प्रथम अभिकथन यह था कि वह राज्य में एक वर्ष से अधिक से निवासी रहा था और द्वितीय यह था कि उसकी पत्नी ने उसका अभित्याग किया था।

दोनों अभिकथन गलत थे किन्तु उन पर इलिनोइस के न्यायालय द्वारा विश्वास किया गया था। इंगलैंड में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि--

(i) विवाह विषयक अभिकथनों (इस मामले में अभित्यजन) के बारे में पति का झूठा साक्ष्य किसी डिक्री को मान्यता देने से इंकार करने के लिए आधार नहीं था, किन्तु

(ii) इलिनोइस न्यायालय की अधिकारिता के बारे में उसके कपट ने इंगलैंड में डिक्री को मान्यता देने से इंकार करना न्यायोचित ठहराया।

सर्वबन्धी निर्णयों के बारे में स्थिति।

18.12 इस नियम[3] के बारे में, कि विदेशी निर्णय कपट के कारण अपास्त किए जा सकते हैं, कभी-कभी यह कहा जाता है कि सर्वबन्धी निर्णयों के बारे में इंगलैंड में एक संभव अपवाद है। उदाहरण के लिए हेल्सबरी ने कहा[4] है कि--

"किन्तु इस साधारण सिद्धान्त के अनुसार, कि सर्वबन्धी निर्णय अभिप्राप्त करने में कपट पर आधारित कोई कार्यवाही तब तक ग्रहण नहीं की जाएगी, जब तक कि निर्णय मूल देश में बना रहता है"।

किन्तु यह कहा जाना चाहिए कि यह दृष्टिकोण भी सार्वभौमिक रूप से स्वीकार नहीं किया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी लेखक[5] ने यह निष्कर्ष निकाला है कि:

"ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता है कि कपट द्वारा अभिप्राप्त किया गया सर्वबन्धी विदेशी निर्णय अति पवित्र माना जाना चाहिए"।

इसी प्रकार डायसी[6] ने कहा है कि:

"किसी भी प्रकार का कोई भी निर्णय और इसलिए कोई भी विदेशी निर्णय, यदि कपट द्वारा अभिप्राप्त किया गया हो तो उस पर आपत्ति की जा सकती है।"

डायसी ने आगे टिप्पणी[7] की है कि यह सिद्धान्त सर्वबन्धी निर्णय के मुकदमेकारों के बीच "लागू हो सकता है", यद्यपि वह अभिस्वीकार करता है कि इस बारे में कुछ संदेह है कि क्या यह सर्वबन्धी निर्णय को इस प्रकार दूषित करता है कि उस से व्यक्तियों के अधिकारों पर प्रभाव पड़े।

मेक एलपाइन के मामले[8] में, पति ने न्यायालय में पत्नी के पते के बारे में मिथ्या व्यपदेशन करके वायोमिंग संयुक्त राज्य अमरीका में विवाह-विच्छेद अभिप्राप्त किया था और इस कपट के कारण पत्नी को कोई सूचना नहीं मिली थी। इस कारण से विवाह-विच्छेद को मान्यता नहीं दी गई।

---

1. बोनापार्ट बनाम बोनापार्ट, (1892) प्रोबेट 402।
2. मिडिलटन बनाम मिडिलटन, (1966) 1 आल० ई० आर० 168।
3. ऊपर पूर्व पैरा 18.8।
4. हेल्सबरी, तृतीय संस्करण, जिल्द 7, पृष्ठ 148।
5. वुल्फ, "रेस ज्युडिकेटा इन डाइवोर्स" ये० वेस्ट, आस्ट्रेलिया एन० एल० रिव्यू जिल्द 1 (1948-50) पृष्ठ 369, पृष्ठ 373 से 380 तक (1948-50), जो पाइरल्स की "रिकोगनिशन आफ फारेन जजमेन्ट्स एटसेट्रा" "में उद्धृत किए गए हैं" (1972) 12 आई० जे० आई० एल० 31, 44।
6. डायसी कांफ्लिक्ट आफ लाज, (1967), पृष्ठ 1007।
7. डायसी, कांफ्लिक्ट आफ लाज, (1967), पृष्ठ 1010।
8. मेक एलपाइन बनाम मेक एलपाइन (1957) 3 डब्ल्यू० एल० आर० (698), (1958) 74 ए० क्यू० आर० पृ० 8 पर उद्धृत।

सूचना नहीं मिली थी या उसे समन नहीं किया गया था या अधिकारिता का अभाव था या निर्णय कपट-पूर्वक अभिप्राप्त किया गया था, विधितः अधिक्षेपित किया जा सकता था।"

"इस संबंध में उल्लेखनीय यह है कि लार्ड चांसलर मैलिस ने अधिकारिता के अभाव और कपट द्वारा अभिप्राप्त किए गए निर्णय दोनों को, नैसर्गिक न्याय के विरुद्ध होने वाले निर्णय के उदाहरणों के रूप में माना था।

"इन उद्धरणों से मैं निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंचा हूं :

"**आर्मीटेज बनाम एटोर्नी जनरल**"[1] वाला नियम अध्यारोही सिद्धांत नहीं है, किन्तु उसके संबंध में अपवाद है। एक अपवाद यह है कि डिक्री अधिकारिता के विषय की बाबत कपट द्वारा अभिप्राप्त की गई थी। यदि यह नियम, जैसा कि कुछ नजीरों में कहा गया है, केवल वहां अपवाद है जहां डिक्री ऐसी परिस्थितियों में दी गई थी जो कि नैसर्गिक न्याय या 'सारवान् न्याय' को आघात पहुंचाती है तो इस बात की परिभाषा कि क्या बात नैसर्गिक न्याय या सारवान् न्याय के विरुद्ध है, इतनी व्यापक है कि उसके अन्तर्गत वह कपट आ जाता है जो इस मामले में पति द्वारा किया गया था।"

निःसंदेह एक ही प्रकार के तथ्य कपट और नैसर्गिक न्याय[2] के भंग की कोटि में आ सकते हैं, जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं।

तथ्यों का विचारण के समय से ही पता लगा लिया जाना चाहिए था।

18.16 इंग्लैंड की विधि देशीय निर्णय को कपट के आधार पर केवल तभी चुनौती देने की अनुज्ञा देती है, जब उन तथ्यों का, जिनका, कि चुनौती देने वाला पक्षकार आश्रय लेता है, विचारण[3] के समय से ही पता लगा लिया गया था। किन्तु यह साधारण नियम शपथ भंग[4] के संबंध में कुछ समस्याएं उत्पन्न करता है।

निष्कर्ष

सिफारिश।

18.17 इस विषय के सभी पहलुओं पर चर्चा करने के पश्चात् हमारी राय यह है कि—

(क) कपट का, मान्यता न दी जाने के लिए आधार के रूप में विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिये और उसे 'लोक नीति' के शीर्ष के अधीन या नैसर्गिक न्याय[5] के भंग के रूप में उस पर कार्यवाही की जाने के लिये नहीं छोड़ा जाना चाहिए।

(ख) इस संबंध में उपबन्ध साधारण उपबन्ध होने चाहिए, जैसा कि साक्ष्य अधिनियम[6] की धारा 44 में है।

---

1. आर्मीटेज बनाम एटोर्नी जनरल, (1906) प्रोबेट 135।
2. ऊपर पैरा 18.9।
3. (क) डचेस आफ किंग्सटन का केस, 2 एस० एम० एल० सी० 754 (12 वां ए० डी०)।
   (ख) यंग बनाम केटली, (1809) 16 वेस० 348, 33 ई० आर० 1016।
   (ग) वासन बनाम वेस्टमिनिस्टर (1861) 4 एल० टी० 80।
4. ऊपर पैरा 18.10।
5. ऊपर पैरा 18.11।
6. ऊपर पैरा 18.12।

अध्याय 19

आनुषंगिक आदेश

I प्रारम्भिक

19.1 अभी तक हमने विवाह-विच्छेद या विधिक पृथककरण के बारे में मुख्य न्यायनिर्णयन की मान्यता के प्रश्न पर चर्चा की है । लगभग प्रत्येक देश में यह सुविदित है कि जब न्यायालय विधायी अधिनियमिति के अधीन विवाह के विघटन के लिए आदेश देता है तो अधिनियमिति से में भरण-पोषण, बालकों की अभिरक्षा, निर्वाह-व्यय और वैसे ही मामलों के लिए आदेश पारित किए जाने के लिए न्यायालय को सशक्त करने वाले उपबन्ध समाविष्ट होते हैं । सुविधा के लिए हम इन आदेशों के प्रति 'आनुषंगिक आदेश' के रूप में जो कि ऐसी अभिव्यक्ति है जिसका कि इस विषय पर के साहित्य में बहुधा उपयोग[1] किया गया है, निर्देश कर सकते हैं । प्रारम्भिक

इस अध्याय में, हम इस प्रश्न की चर्चा करेंगे कि विदेशी न्यायालयों द्वारा विवाह विषयक कार्यवाहियों में पारित किए गए आनुषंगिक आदेशों को कहां तक मान्यता दी जानी चाहिये ।

19.2 विवाह विषयक हेतुकों में आनुषंगिक आदेश पारित करने की अधिकारिता का इतिहास रोचक है। कामन ला के अनुसार पति-पत्नी एक साथ रहने के लिए आबद्ध थे, किन्तु कतिपय परिस्थितियों में विवाह-विच्छेद की डिक्री धार्मिक न्यायालयों द्वारा पारित की जा सकती थी । एक विद्वान् लेखक ने इस स्थिति को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया[2] है,— इतिहास ।

> "जहां डिक्री पत्नी के द्वारा लाए गए वाद में सुनाई गई थी जहां पृथक् रहने की मात्र अनुज्ञा उसे पर्याप्त अनुतोष नहीं देती थी । विवाह मात्र के तथ्य से उसकी संपूर्ण सम्पत्ति उसके पति के नियंत्रण के अधीन चली आती थी और वह पति से पृथक तब तक नहीं रह सकती थी, जब तक कि उसके लिए निर्वाह के साधनों का उपबन्ध नहीं किया जाता था । अतः न्यायालय, उसके पक्ष में निर्वाह व्यय के के लिए डिक्री पृथक्करण की डिक्री की अनुषंगी के रूप में सुना सकता था ।"

19.3 यह वह मूल आधार है जिससे आनुषंगिक आदेश पारित किए जाने के लिए आधुनिक अधिकारिता प्राप्त की गई है । इस विषय पर विचार किए जाने वाला प्रमित प्रश्न यह है कि विदेशी न्यायालयों द्वारा पारित ऐसे आदेशों को भारत में मान्यता दी जानी चाहिए या नहीं । उन कारणों से, जिनको हम बाद[3] में ब्यौरेवार उपदर्शित करेंगे, हमारा विचार है कि विदेशी न्यायालय द्वारा पारित आनुषंगिक आदेशों को स्वतः मान्यता वहां भी नहीं होनी चाहिए जहां कि विवाह-विच्छेद की मंजूरी, जिसके परिणामस्वरूप आनुषंगिक आदेश पारित किया गया है, प्रस्थापित विधि के अधीन मान्य की जाने के लिए अपेक्षित है । विचारार्थ प्रश्न

19.3क त्रुटि के निष्कर्षों को भी मान्यता दी जाने की आवश्यकता नहीं है । निःसंदेह, त्रुटि की बाबत न्यायालय का निष्कर्ष आनुषंगिक आदेश से भिन्न होता है किन्तु कतिपय अन्य पहलुओं से पृथक्, जिनके बारे में बाद[4] में उल्लेख किया जाएगा, यह कहा जा सकता है कि ऐसे निष्कर्ष को मान्यता न देने में कोई वास्तविक तर्कहीनता नहीं है, क्योंकि निष्कर्ष की अमान्यता विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की मान्यता पर प्रभाव नहीं डालती । यह भी कहा जा सकता है कि यदि त्रुटि के निष्कर्ष को निश्चायक बना दिया जाता है तो कभी अन्याय भी हो सकता है; उदाहरण के लिए जहां विदेशी न्यायालय में कार्यवाहियां एक पक्षीय रही हों । त्रुटि के निष्कर्ष

इस विचारण से पृथक् त्रुटि के निष्कर्ष को मान्यता न दी जाने के लिए सैद्धांतिक औचित्य यह है कि वह बात जिससे कि विधि को मान्यता देनी चाहिए, प्रास्थिति पर विदेशी न्यायालय द्वारा किए गए अवधारण

1. उदाहरण के लिए, आगे का पैरा 19.2 देखिए ।
2. जे० एल० बर्टन "एनफोर्समेन्ट आफ फाइनेंशियल प्रोविजन्स, इन ग्रेबसन" (ईन्डीन)—ए सेंचुरी आफ फेमिली ला, पृष्ठ 352, 353।
3. आगे पैरा 19.10 और 19.11 देखिए ।
4. आगे पैरा 19.4 और 19.11 ।

का प्रभाव है, क्योंकि विधि की यह साधारण नीति है कि कतिपय विशेष परिस्थितियों के न होने पर, उन व्यक्तियों को, जिनका एक देश में विवाह-विच्छेद कर दिया जाता है, दूसरे देश में विवाहित नहीं माना जाना चाहिए। विधि की इस नीति का डिक्री को वहां तक मान्यता देकर, जहां तक वह विवाह का विघटन करती है, समाधान किया जाता है और त्रुटि के निष्कर्ष को मान्यता देने की और कोई बाध्यकारी आवश्यकता नहीं है।

II आनुषंगिक आदेश की अमान्यता के बारे में इंग्लैंड के ऐक्ट में उपबंध

1971 के इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8(3)।

19.4 इस प्रक्रम पर, हम अधिक प्रमित रूप से उस बात को उपदर्शित करने के लिए, जो कुछ हमारे मस्तिष्क में है, 1971 के इंग्लैंड ऐक्ट की धारा 8(3) के प्रति निर्देश कर सकते हैं, जोकि इस प्रकार[1] है--

> "(3) इस ऐक्ट में किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की या भरण-पोषण, अभिरक्षा की किसी कार्यवाही में या किसी ऐसी कार्यवाही में किए गए आनुषंगिक आदेश में की गई त्रुटि के किसी निष्कर्ष को मान्यता देने की अपेक्षा करती है।"

इंग्लैंड के उपबन्ध में निहित सिद्धान्त।

19.5. इंग्लैंड के ऐक्ट के इस उपबन्ध में अन्तर्निहित सिद्धांत यह है कि विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रथमतः प्रास्थिति का अवधारण करती है और दूसरे देश के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह डिक्री के परिणामस्वरूप पारित आनुषंगिक आदेशों को मान्यता दे, और उस देश के लिए यह भी आवश्यक नहीं है कि वह त्रुटि के निष्कर्षों को मान्यता दे। ये दोनों विषय जहां तक विदेश का संबंध है, महत्वहीन है। इसके अतिरिक्त पहला बाध्यता[2] के क्षेत्र से संबंधित है। जैसा कि लार्ड चांसलर पारकर (जोकि वे उस समय थे) ने आनुषंगिक आदेशों के प्रतिनिर्देश से साधारण[3] रूप में कहा था --

> "प्रास्थिति के बारे में विदेशी विधि के उपयोग में बाध्यता से संबंधित विदेशी विधि का उपयोजन अन्तर्वलित नहीं है।"

यह सच है कि ये कथन विवाह विच्छेद के संदर्भ में नहीं किए गए थे, किन्तु वे विवाह-विच्छेद को लागू होते हैं। इस प्रकार यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विदेशी न्यायालय द्वारा विवाह का विघटन भरण-पोषण को वहां भी समाप्त नहीं करता है, जहां इंग्लैंड के न्यायालय ने न्यायिक पृथककरण के लिए बाद में निर्वाह-व्यय के लिए आदेश किया है। **वुड** बनाम **वुड**[4] में अपील न्यायालय द्वारा इस प्रकार यह अभिनिर्धारित किया गया था।

वुड बनाम वुड का इंग्लैंड का मामला।

19.6 ऊपर निर्दिष्ट **वुड** बनाम **वुड**[5] के इंग्लैंड के मामले में अपील न्याययालय ने, विवाह-विच्छेद की विधि की बाबत, एक तरफ तो प्रास्थिति के विषयों और दूसरी तरफ वैयक्तिक अधिकार और डिक्री से उत्पन्न होने वाली बाध्यता के विषयों के बीच विभाजन किया था। इंग्लैंड के न्यायालय ने विदेशी डिक्री को विवाह की प्रास्थिति समाप्त करने वाली डिक्री के रूप में स्वीकार किया था, किन्तु इस तर्क को स्वीकार नहीं किया था कि विदेशी डिक्री भरण-पोषण के आदेशों के अधीन विद्यमान वैयक्तिक अधिकारों का उन्मोचन कर देती थी। उस सीमा तक--किन्तु केवल उस सीमित सीमा तक--"विभाज्य विवाह-विच्छेद" का सिद्धांत स्वीकार किया गया है--इस सिद्धांत को बहुधा विचार-विमर्श में नियम के वर्णन के रूप में प्रस्तुत[6] किया जाता है।

वुड बनाम **वुड** (जो आगे आया है) किए गए टिप्पण में विद्वान् लेखक ने[7] यह मत व्यक्त किया था:--

> "जहां तक चर्चा की जा रही समस्या का संबंध है यह प्रतीत होगा कि यह अच्छी विधि और अच्छी नीति दोनों है कि पत्नी के भरण-पोषण के अधिकार पर पति के अधिवास के न्यायालयों द्वारा किए गए न्यायनिर्णयन की, प्रश्नगत किए जाने की संभावना के बिना, मान्यता नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि इससे स्व-विवाह के विघटन को जो कि उन्हीं कार्यवाहियों का परिणाम था, इस प्रकार मान्यता मिल जाएगी--नीति के विषय के रूप में यह कदापि वांछनीय नहीं है कि परिस्थितियों की उपेक्षा

---

1. 1971 के इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8(3)।
2. आगे पैरा 19.6।
3. **मेटलिस** बनाम **नेशनल बैंक ऑफ फ्रांस** (1957) 2 आल ई० आर० 113 (सी० ए०) 2 आल ई० आर० 1.13, '(सी० ए० लार्ड न्यायाधीश पारकर के अनुसार)।
4. **वुड** बनाम **वुड** (1957) 2 आल ई० आर० 14, 24, 29, 100 एस० जे० 860, रिवर्सिंग (1956) 3 आल ई० आर 645।
5. **वुड** बनाम **वुड** (1957) 2 आल ई० आर० 14।
6. आगे पैरा 19.10।
7. पी० बी० कार्टर (1957) 33 ब्रिटिश ईयर बुक आफ इन्टरनेशनल ला 336।

करते हुए इंग्लैंड के न्यायालय को इस बात के लिए विवश किया जाये कि वह सभी मामलों में उस स्त्री को, जो इंग्लैंड में निवासी थी और संभवतः अब अधिवसित है, जिसने संभवतया इंग्लैंड की विधि में ज्ञात कोई अपराध नहीं किया है, अपने अधिकारों और भरण-पोषण आदेश के अधीन अपने बच्चों के अधिकारों से वंचित करे, और उस स्त्री को वह अनुतोष (यदि कोई हो) जो कि संभवतया दूरस्थ देश के न्यायालय ने उन कार्यवाहियों में देने का विनिश्चय किया है, जिनके बारे में उसे संभवतया और युक्तियुक्त रूप से कुछ पता नहीं है अभिप्राप्त करने के लिए छोड़ दिया जाए।"

III अमरीका के विनिश्चय

19.7 यह उल्लेखनीय है कि **वुड बनाम वुड**[1] में, खंड न्यायालय के विनिश्चय पर, जिसने कि उसी मामले में अपील न्यायालय के निर्णय का, जिसके प्रति हम ऊपर निर्देश[2] कर चुके हैं, मार्ग-निर्देश किया था, किया था, प्रोफेसर गुडहार्ट द्वारा ला क्वार्टरली रिव्यू[3] में टिप्पणी की गई थी। उस टिप्पणी में, उन्होंने कतिपय अमरीकी मामलों को, विशेष रूप से **एस्टिन** बनाम **एस्टिन**[4] को जो कि सुयंक्त राज्य अमरिका के सुप्रीम कोर्ट द्वारा किया गया विनिश्चय है और **वेंडरबिल्ट** बनाम **वेंडरबिल्ट**[5] को, जोकि न्यूयार्क के अपील न्यायालय द्वारा किया गया विनिश्चय है को निर्दिष्ट किया था (उस टिप्पण के पश्चात् वेन्डरबिल्ट वाले मामले में विनिश्चय का सुप्रीम कोर्ट द्वारा अनुमोदन कर दिया गया था) इन विनिश्चयों का तर्काधार यह है कि न्यायालय वैयक्तिक दावे या बाध्यता पर न्याय निर्णयन तब तक नहीं कर सकता है जब तक कि उसे स्वयं प्रतिवादी पर अधिकारिता प्राप्त न हो। अमरीका के मामले।

इन दोनों अमरीकी मामलों में,[6] न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत प्रश्न, संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान के आर्टिकल 6, सैक्शन 1[7] (जिसे सामान्य रूप से "पूर्ण विश्वास और प्रत्यय खण्ड" कहा गया है) के न्यूयार्क राज्य की विधि पर, जैसी कि वह अर्थ प्रतिपारित अधिनियमित की गई है, प्रभाव के प्रति निर्देशित थे। वह आर्टिकल यह उपबन्ध करता है कि "प्रत्येक राज्य में लोक अधिनियमों, अभिलेखों और प्रत्येक अन्य राज्य को न्यायिक कार्यवाहियों पर पूर्ण विश्वास किया जाएगा और उन्हें प्रत्यय दिया जाएगा।"

19.8 **एस्टिन** बनाम **एस्टिन**[8]—संयुक्त राज्य अमरीका के सुप्रीम कोर्ट को निर्णय—में पत्नी ने अपने पति के विरुद्ध न्यूयार्क न्यायालय से उस समय, जब दोनों पक्षकार उस राज्य में अधिवसित थे, अनुपोषण आदेश (हमारे भरण-पोषण आदेश के समतुल्य) अभिप्राप्त किया था। बाद में पति ने, नेवेडा में अधिवास अर्जित कर लेने पर, विवाह-विच्छेद की "एक पक्षीय" डिक्री अभिप्राप्त कर ली। न्यूयार्क के सबसे बड़े न्यायालय ने (जैसा कि सुप्रीम कोर्ट के बहुमत का विचार था) यह अभिनिर्धारित किया कि उसको अधिकारिता अनुपोषण आदेश के साथ विवाह-विच्छेद का आदेश बनाए रखने की थी, अब प्रश्न यह था कि वह निष्कर्ष संविधान के विश्वास और प्रत्यय वाले खण्ड से संगत था या नहीं। अमरीकी मामला।

सुप्रीम कोर्ट में न्यायाधीशों की विभिन्न राएं थीं, जैकसन की राय थी कि न्यूयार्क न्यायालय विशिष्ट प्रकार की,—"एकपक्षीय" डिक्री—के विरुद्ध विभेद कर रहा था और वह पूर्ण विश्वास और प्रत्यय के खण्ड की बाध्यता से संगतिपूर्वक ऐसा नहीं कर सकता था। किन्तु न्या० फ्रेंकफर्टर ने, इस बात से संतुष्ट न होते हुए कि न्यूयार्क अपील न्यायालय, वस्तुतः, उस निष्कर्ष पर, जोकि उस पर आरोप्य है, पहुंचा था, तदनुसार मामला न्यूयार्क न्यायालय को पुनः निर्देशित किया।

संयुक्त राज्य अमरीका के सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों का इस मामले में बहुमत इस परिस्थिति पर आधारित था कि डिक्री "एकपक्षीय" डिक्री थी। यह दृष्टिकोण अपनाते हुए कि न्यूयार्क के सबसे बड़े न्यायालय

1. **वुड बनाम वुड** (1956) 3 आल ई० आर० 645 (डी० सी० आन अपील); **वुड बनाम वुड** (1957) 2 आल ई० आर० 14।
2. ऊपर पैरा 19.4।
3. गुडहर्ट इन (1957) 73 एल० क्यू० आर० 29 **वेंडरबिल्ट बनाम वंडरबिल्ट** (1957) 354 यू० एस० 416, 418 अपील पर।
4. **एस्टिन बनाम एस्टिन**, (1948) 334 यू० एस० 541, आगे पैरा 19.8।
5. **वेंडरबिल्ट** बनाम **वेंडरबिल्ट**, (1956) 135 एन० ई० दूसरा 553 (न्यूयार्क अपील न्यायालय) **वेंडरबिल्ट बनाम वेंडरबिल्ट** (1957 354 यू० एस० 416, 418 अपीलों पर।
6. **वुड बनाम वुड** (1957) 2 आल ई० आर० 14 (सी० ए०) में चर्चा देखिए।
7. संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान का अनुच्छेद 4, धारा 1।
8. **एस्टिन बनाम एस्टिन**, (1948) 334 यू० एस० 541, 546, 547, 549।

ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अनुपोषण आदेश के साथ विवाह-विच्छेद का आदेश भी बना रह सकता था और उनके समक्ष इस मामले में अनुपोषण आदेश इस प्रकार बना रहा था, उनकी यह राय थी कि प्रथमतः वैवाहिक स्थिति में परिवर्तन में आवश्यक रूप से यह परिणाम अन्तर्वलित नहीं था कि विवाह की सभी विधिक घटनाओं पर, जिनके अन्तर्गत अनुपोषण आदेश के अधीन पत्नी के सांपत्तिक कल्प वैयक्तिक अधिकार भी थे, उसके द्वारा प्रभाव पड़ा था और दूसरे "एकपक्षीय" विवाह-विच्छेद के मामले में न्यूयार्क न्यायालय द्वारा अपनाये गए दृष्टिकोण के अनुसार, पूर्ण विश्वास और प्रत्यय श्रेय के खंड में कुछ भी यह आपत्ति उठाने योग्य नहीं था कि नेवेडा की डिक्री की परिधि का विस्तार, नेवेडा के बाहर, विवाह की प्रास्थिति के अवधारण से परे नहीं था। सुप्रीम कोर्ट का बहुमत का निर्णय न्या० डगलस द्वारा सुनाया गया था, जिसमें यह उद्धरण था : "नेवेडा··· प्रत्यक्षतः इस नियम का अनुसरण करता है कि विवाह का विघटन अनुपोषण आदेश को समाप्त कर देता है। बहुमत द्वारा आगे यह कहा गया कि पति के दावे में, यदि स्वीकार कर लिया जाए तो, (पत्नी को) न्यूयार्क न्यायालय के (निर्णय) के अधीन अपने दावे को प्राख्यात करने से रोकने के प्रयास से कम कुछ भी अन्तर्वलित नहीं होगा"।

अमरीका के मामलों का सिद्धान्त।

19.9 हमें वेन्डर बिल्ट के मामले पर चर्चा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु दोनों मामलों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि--यदि कोई कल्पित मामला लिया जाए तो--कोई पत्नी अपने पति से (जो उस समय न्यूयार्क में अधिवसित हो), भरण-पोषण या उसके समतुल्य आदेश (जैसा कि वह राज्य की विधि द्वारा स्पष्ट रूप से करे) अभिप्राप्त करती है और यदि, उसके पश्चात् उसका पति इंग्लैंड में अधिवास अर्जित कर लेता है और इंग्लैंड में एकपक्षीय विवाह-विच्छेद अभिप्राप्त कर लेता है तो न्यूयार्क राज्य के न्यायालय निम्नलिखित आधार पर अपने पूर्व विद्यमान भरण-पोषण आदेश को बनाए रखने के लिए या उसमें फेरफार करने के लिए जैसा कि वे ठीक समझें, स्वयं को स्वतन्त्र मानेंगे या तो (i) इस आधार पर कि शिष्टाचार का सिद्धांत इंग्लैंड की "एकपक्षीय" डिक्री की वैवाहित प्रास्थिति के अवधारण को मान्यता से भिन्न किसी महत्तर अभिस्वीकृति की अपेक्षा नहीं करता है, या (ii) इस आधार पर कि चूंकि इंग्लैंड की डिक्री प्रत्यक्षतः विवाहित प्रास्थिति का अवधारण करने से अधिक कोई बात करने के लिए तात्पर्यित नहीं थीं (और विशेष रूप से भरण-पोषण के बारे में न्यूयार्क विधि पर और उसके अधीन किए गए किसी आदेश पर प्रभाव डालने के लिए तात्पर्यित नहीं थी), अतः इस विषय का विनिश्चय करना पूर्ण रूप से न्यूयार्क न्यायालय की अधिकारिता के अन्तर्गत था कि, उसकी अपनी विधि के अनुसार उसके अपने नागरिकों की स्थिति और वैयक्तिक अधिकारों पर (जिनके अन्तर्गत विवाह से उत्पन्न अपत्य भी हैं) इंग्लैंड की डिक्री का क्या प्रभाव था।

इस प्रकार अमरीका का दृष्टिकोण, जैसा कि वह उपर्युक्त विनिश्चयों से समझा जा सकता है और इंग्लैंड का दृष्टिकोण, सारतः समान है।

IV विभाज्य विवाह-विच्छेद

सांपाश्विक आदेश और विभाज्य विवाह-विच्छेद।

19.10 यह इस सन्दर्भ में है कि 'विवाह-विच्छेद' अभिव्यक्ति का बहुधा प्रयोग[1] किया जाता है किन्तु, वास्तव में यह अभिव्यक्ति परिशुद्ध अभिव्यक्ति[2] नहीं है। जो कुछ विभाज्य है वह विवाह-विच्छेद नहीं है, किन्तु वह सम्मिश्र आदेश है, जिसका कि विवाह-विच्छेद एक प्रसंग है।

अनुपोषण करने का अधिकार सामान्यतः विवाह सम्बन्धी प्रास्थिति में विद्यमान होता है, किन्तु यह शुद्ध रूप से वैयक्तिक अधिकार है जो कि पति या पत्नी को दूसरे से वैयक्तिक रूप में प्राप्त होता है। यद्यपि निर्वाह व्यय बहुधा विवाह-विच्छेद की डिक्री के अनुषंग में दिया जाता है, किन्तु वह विवाह-विच्छेद के बिना भी, पृथक् भरण-पोषण के लिए डिक्री के रूप में प्रदान किया जा सकता है। इस प्रकार भरण-पोषण के लिए दी गई डिक्री विवाह सम्बन्धी प्रास्थिति के अस्तित्व पर प्रभाव नहीं डालती। वह पूर्ववत् बनी रहती है, किन्तु उसके सम्बन्ध में समुचित न्यायालय में विवाह-विच्छेद कार्यवाही की जा सकती है। लफलार[3] ने इस पहलू को स्पष्ट किया है।

1. उदाहरण के लिए लैफलार की कांफ्लिक्ट आफ लाज, (1968) पृष्ठ 551 देखिए।

2. ऊपर पैरा 19.6।

3. लैफलार कांफ्लिक्ट आफ लाज (1968), पृष्ठ 551।

लैफलार[1] ने आगे यह कथन किया है :

"विलोमतः पूर्व निर्वाह व्यय निर्णय को सदैव उस पश्चात्वर्ती एकपक्षीय विवाह-विच्छेद की डिक्री से अतिष्ठित नहीं किया जात है, जिसमें वह, जिसे कि निर्वाह व्यय दिया गया है, पक्षकार नहीं था। कभी-कभी स्वीकृत रूप से विधिमान्य विवाह-विच्छेद की डिक्री के संबंध में निर्वाह व्यय का विधिमान्य निर्णय प्राप्त करना असंभव होगा क्योंकि विवाह-विच्छेद कार्रवाई अधिवार्सीय विवाह संबंधी प्रास्थिति के विरुद्ध केवल वाद लाने वाले अर्जीदार के साथ, न्यायालय के समक्ष सर्वबंधी रूप से अग्रसर हो सकती है। निर्वाह व्यय के लिए कार्यवाही, या तो उस प्रतिवादी के संबंध में जिस पर वाद लाया गया है, वैयक्तिक अधिकारिता पर या उसकी स्थानीय संपत्ति के विरुद्ध की गई कुर्की या गारनिशी आदेश पर आधारित होनी चाहिए। ऐसे मामले में, पृथक् भरण-पोषण के लिए पूर्व डिक्री विवाह-विच्छेद के पश्चात् भी प्रवृत्त रहती है यदि उस राज्य की विधि जिसमें पूर्व डिक्री दी गई थी, यह उपबंध करती है कि वह समाप्त[2] हो गई है।"

त्रुटि के निष्कर्ष और आनुषंगिक आदेशों की मान्यता के विरुद्ध कन्वेंशन में उपबन्ध।

19.11 इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि हेग कन्वेन्शन के आर्टिकलक[3] 1, द्वितीय पैरा यह उपदर्शित करता है कि कन्वेन्शन इस तथ्य के लिए मान्यता प्राप्त कराने तक सीमित है कि विवाह विघटित कर दिया गया है। चर्चा में भाग लेने वाले अधिकांश प्रतिनिधियों के मस्तिष्क में वह अन्तर्निहित उद्देश्य, जिसके लिए कन्वेन्शन किया गया था, विवाह-विच्छेद के पश्चात् किसी भी पक्षकार के पुर्नविवाह के लिए कृत्रिम अवरोधों को घटाना था। इसी कारण कन्वेन्शन में त्रुटि के निष्कर्षों को मान्यता दिलाने के जर्मन प्रस्ताव के प्रति उनको कोई सहानुभूति नहीं थी और जिसका आस्ट्रीया, हालैण्ड और बेल्जियम के प्रतिनिधियों द्वारा भी समर्थन किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि जर्मनी के इस प्रस्ताव ने इस तथ्य की उपेक्षा की कि भिन्न-भिन्न सामाजिक दशाओं वाले भिन्न-भिन्न देशों में इस बारे में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है कि "त्रुटि" क्या है या त्रुटि को ध्यान में रखा भी जाना चाहिए या नहीं इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि कुछ देशों में विवाह-विच्छेद त्रुटि का विचार किए बिना, अर्थात् पारस्परिक सहमति से भी अनुज्ञात है।

त्रुटि के निष्कर्षों के अतिरिक्त, प्रतिनिधि कन्वेन्शन का आनुषंगिक आदेश पर विस्तार करने के प्रति उदासीन थे, जैसे कि ऐसे आदेश जो बालकों के भरण-पोषण और अभिरक्षा से संबंधित थे क्योंकि या तो वहां आदेशों से संबंधित अन्य कन्वेंशन[4] विद्यमान थे अथवा यह भय था कि ऐसी उलझनें पैदा न हो जाएं जो कन्वेंशन के आवश्यक उद्देश्य के प्रति सहमति पर प्रतिकूल प्रभाव डाल दें।

आनुषंगिक आदेश जैसे कि बालकों के भरण-पोषण के संदाय के लिए आदेश या उनकी अभिरक्षा को विनियमित करने वाले आदेश या उन तक पहुंच के आदेश, विशेष समस्याएं प्रस्तुत करते हैं क्योंकि उनका प्रभाव शायद ही कभी समाप्त होता हो।

आनुषंगिक आदेशों को मान्यता न देने के लिए सिफारिश।

19.12 ये ही कारण थे जोकि कन्वेंशन के आर्टिकल 1 के द्वितीय पैरा को व्याख्या करते हैं और मोटे तौर पर ये ही कारण इस विषय पर विनिर्दिष्ट उपबंध को शामिल करने को न्यायोचित ठहराते हैं। इस प्रयोजन के लिए इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8(3) जोकि हम पहले ही उद्धृत[5] कर चुके हैं, उपयुक्त पूर्वोदाहरण प्रस्तुत करती है। हम उस सिद्धान्त से सहमत हैं जिस पर यह आधारित[6] है और हर सिफारिश करते ह कि इसको माना जाना चाहिए।

V. आनुषंगिक आदेशों के लिए उपबंध की आवश्यकता

विवाह-विच्छेद की मान्यता का प्रभाव और भरण-पोषण के बारे में स्थिति।

19.13 निःसंदेह, उन आनुषंगिक आदेशों को मान्यता न देने से जिनके बारे में हमने ऊपर[7] सिफारिश की है, अभाव की स्थिति पैदा हो सकती है[8]। उन विषयों पर, जिन पर आनुषंगिक आदेश पारित किए गए

---

1. लैफलार, कन्फिलक्ट आफ लाज (1968), पृष्ठ 551।
2. एस्टिन बनाम एस्टिन, (1948) 334 यू० एस० 541।
3. आर्टिकल 1, हेग कन्वेंशन का द्वितीय पैरा।
4. उदाहरण के लिए, (क) बालकों के प्रति निर्वाह व्यय सम्बन्धी बाध्यताओं को लागू विधि पर 24 अक्तूबर, 1956 का कन्वेंशन, और (ख) बालकों के प्रति खाद्य सम्बन्धी बाध्यताओं से सम्बन्धित विनिश्चयों की मान्यता और निष्पादन पर 15 अप्रैल, 1958 का कन्वेंशन।
5. ऊपर पैरा 19.4।
6. उपर पैरा 19.5।
7. आगे पैरा 19.12।
8. आगे पैरा 19. 15 भी देखिए।

थे या किए जा सकते थे, उन पक्षकारों के बीच क्या विधिक स्थिति होगी ? ऐसी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। इस कठिनाई का निदर्शन इंग्लैंड के **टोरक** बनाम **टोरक**[1] के मामले में मिलता है जिसके बारे में हम बाद[2] में चर्चा करेंगे।

समुचित आदेश पारित करने के लिए भारतीय न्यायालय को सशक्त करने के लिये आवश्यक उपबन्धों की रूपरेखा।

19.14 इस प्रक्रम पर हम संक्षेप में उस उपबंध की रूपरेखा बता दें जोकि समुचित आदेश[3] पारित करने के लिए भारतीय न्यायालयों को सशक्त करने के लिए आवश्यक है। जहां विदेशी विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण को प्रस्थापित नए ऐक्ट के आधार पर मान्यता दी जाती है, वहां चाहे विदेशी न्यायालय ने किसी भी पक्षकार के भरण-पोषण के लिए आदेश या विवाह के अवयस्कों की अभिरक्षा, शिक्षा या भरण-पोषण के लिए आदेश, किसी भी पक्षकार को किसी संपत्ति के या उनकी संयुक्त संपत्ति के व्ययन के लिए आदेश, या अन्य अनुषंगी आदेश पारित किया हो या नहीं, कोई भी पक्षकार सक्षम न्यायालय को अनुषंगी आदेश पारित करने के लिए आवेदन कर सकता है।

इस संदर्भ में, "सक्षम न्यायालय" से ऐसा न्यायालय से अभिप्रेत होगा :—

(क) जो, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन, यथास्थिति, विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण के लिए कार्यवाहियों का विचारण करने में सक्षम होता, यदि ऐसी कार्यवाही उस तारीख को, जिस को प्रस्तुत आवेदन फाइल किया जाता है, आनुषंगिक आदेश के लिए अब आवेदन करने वाले पक्षकार द्वारा, उस विधि के अधीन उपलभ्य आधार पर, संस्थित की गई थी, और

(ख) जिसको, ऐसी विधि के अधीन, विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण के लिए कार्यवाहियों की समाप्ति पर या उसके पश्चात ऐसा आनुषंगिक आदेश (अर्थात् वह आनुषंगिक आदेश, जिसके लिए वर्तमान आवेदन किया गया है पारित करने की शक्ति होगी।

19.15 ऐसे उपबन्ध की आवश्यकता निम्नलिखित दो तथ्यों के मिश्रित प्रवर्तन के कारण उत्पन्न होती है :—

(क) विदेशी न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए विवाह-विच्छेद को प्रस्थापित विधि के अधीन मान्यता दी जानी है, और पक्षकार आगे पति और पत्नी नहीं रहेंगे,

(ख) साथ ही, चूंकि प्रस्थापित विधि में यह उपबंध[4] किया जा रहा है (पारिणामिक रूप से) कि विदेशी न्यायालय द्वारा पारित आनुषंगिक आदेश को मान्यता नहीं दी जाए, अतः आनुषंगिक आदेश भारत में निष्प्रभावी होगा।

इसका परिणाम यह होगा कि आनुषंगिक आदेशों द्वारा शासित मामलों की बाबत एक दरार[5] सी पड़ जाएगी और उसी दरार को भरने के लिए ऊपर[6] सुझाई गई प्रकृति के उपबन्ध की आवश्यकता है।

VI. भरण-पोषण और अभिरक्षा के बारे में विभिन्न अधिनियमों में उपबंध

भरण-पोषण के बारे में विद्यमान कानून।

19.16 इस संबंध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि हो सकता है कि भारतीय कानून के विद्यमान उपबंधों में स्थिति के सभी पहलू न हों। उदाहरण के लिए, भरण-पोषण की बाबत हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 और दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125—यदि इन दो महत्वपूर्ण उपबंधों को लिया जाए तो यह मामला उनके अंतर्गत नहीं आएगा क्योंकि विवाह-विच्छेद के पश्चात् इन दोनों विधायी उपबंधों में से कोई भी लागू नहीं होता है। इस प्रकार, हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 18 हिन्दू पत्नी के भरण-पोषण के लिए उपबंध करती है। यह अभिव्यक्ति विधितः मान्यताप्राप्त विदेशी विवाह-विच्छेद के पश्चात लागू नहीं होगी। 1973 की संहिता की धारा 125 न्यायिकतः विवाह-विच्छेद प्राप्त पत्नी के लिए आभिप्रेत नहीं है। यह भी संभव नहीं होगा कि भरण-पोषण की बाध्यता

1. टोरक बनाम टोरक, (1973) आल इंग्लैंड रिपोर्टस 101, (1973) 1 वीकली ला रिपोर्ट, 1066।

2. आगे पैरा 19.24 देखिए।

3. यह प्रारूप खण्ड नहीं है।

4. ऊपर पैरा 19.12।

5. ऊपर पैरा 19.13।

6. ऊपर पैरा 19.14।

अधिरोपित करने वाले किसी अनुमित कामन ला के सिद्धान्त का आश्रय लिया जाए, क्योंकि एक बार जब विवाह विधिपूर्णतया समाप्त मान लिया जाता है तो कामन ला में पूर्व पत्नी का भरण-पोषण करने की कोई बाध्यता नहीं है।

अभिरक्षा ।

19.17 इसी प्रकार अप्राप्तवय बालकों की अभिरक्षा आदि की बाबत यह है कि अन्य केन्द्रीय अधिनियमों के अंतर्गत भी इस स्थिति के लिए उपबंध नहीं है । उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति के संरक्षक की नियुक्ति के लिए आवेदन संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 के अधीन किया जा सकता है और अभिरक्षा के लिए आदेश उस अधिनियम के अधीन कतिपय परिस्थितियों में पारित किया जा सकता है, किन्तु यह अधिनियम विवाह के विघटन से उत्पन्न स्थिति के संबंध में कार्यवाही करने के उद्देश्य से नहीं बनाया गया है । यह हिन्दू अप्राप्तवयता आदि अधिनियम, 1956 को आवेदन लागू होता है । इसके अतिरिक्त विभिन्न अधिनियमों में अर्थात, हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम,[1] 1956 की धारा 6 और संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम,[2] 1890 की धारा 19 में अंतर्विष्ट अत्यंत निर्बन्धात्मक उपबंधों के कारण कतिपय कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं । इन कठिनाइयों के उदाहरण रिपोर्ट किए कुछ मामलों[3-8] से दिए जा सकते हैं ।

संरक्षक आदि अधिनियम में के उपबन्ध ।

19.18 इस सम्बन्ध में, हम संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 19 को उद्धृत कर सकते हैं, जो कि निम्नलिखित उपबन्ध करती है :—

"19. इस अध्याय की कोई भी बात न्यायालय को प्राधिकृत न करेगी कि वह, ऐसे अप्राप्तवय को, जिसकी सम्पत्ति प्रतिपाल्य अधिकरण के अधीक्षण के अधीन है, सम्पत्ति का संरक्षक नियुक्त या घोषित करे, अथवा—

(क) उस अप्राप्तवय के, जो विवाहिता नारी है और जिसका पति न्यायालय की राय में उसके शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य नहीं है, अथवा

(ख) उस अप्राप्तवय के, जिसका पिता जीवित है और न्यायालय की राय में अप्राप्तवय के शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य नहीं है, अथवा

(ग) उस अप्राप्तवय के, जिसकी सम्पत्ति उसके शरीर का संरक्षक नियुक्त करने के लिए सक्षम प्रतिपाल्य अधिकरण के अधीक्षण के अधीन है ।"

इस धारा के खण्ड (ख) को विशेष सुसंगति है ।

संरक्षकता के बारे में हिन्दू विधि ।

19.19 हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 6 (पारिणामिक रूप से) यह उपबन्ध करती है कि पिता को संरक्षकता का अधिमानी अधिकार है, यद्यपि मां को निश्चित आयु तक अभिरक्षा का अधिमानी अधिकार होता है । संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (ऊपर उद्धृत)[9] की धारा 19(ख) द्वारा सारतः यह अधिनियमित किया गया है कि यह अधिनियम न्यायालय को उस अप्राप्तवय के शरीर का संरक्षक नियुक्त करने या घोषित करने के लिए प्राधिकृत नहीं करता है जिसका पिता जीवित है, यदि पिता न्यायालय की राय में, अप्राप्तवय के शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य नहीं है । इन दो उपबन्धों को पिता के पक्ष में कुछ महत्व दिया जाता है किन्तु हिन्दू विवाह अधिनियम, 1956 की धारा 26, जो कि इस अधिनियम के अधीन विवाह विषयक कार्यवाहियों के दौरान या उनकी समाप्ति पर अपत्यों को अभिरक्षा आदि के लिए आदेशों के बारे में उपबन्ध करती है, भिन्न आधार पर है । उस धारा के अधीन, न्यायालय अप्राप्तवय अपयों की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में, अपत्यों की इच्छा के अनुकूल, जहां कहीं सम्भव हो, ऐसे आदेश कर सकता है, जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे ।

1. आगे पैरा 19.19 ।
2. आगे पैरा 19.18 ।
3. कैप्टेन रतन अमृत सिंह बनाम कमलजीत, ए० आई० आर० 1961, पंजाब 51 ।
4. सुनील कुमार बनाम सतीरानी, ए० आई० आर० 1969, कलकत्ता 573 ।
5. कमलालक्ष्मी अम्मा बनाम भास्कर मेनन, ए० आई० आर० 1961, केरल 154, 155, पैरा 2 ।
6. राघवन नैयर बनाम लक्ष्मी कुट्टी, ए० आई० आर० 1961, केरल 193 ।
7. फुला पारिड़ा बनाम वैश्नम, ए० आई० आर० 1966, उड़ीसा 60 ।
8. अविनाश देवी बनाम डाक्टर खजान सिंह, ए० आई० आर० 1962 पंजाब 326; आगे पैरा 19.19 ।
9. ऊपर पैरा 19.18 ।

हिन्दू विवाह अधिनियम और संरक्षकों से सम्बन्धित अधिनियमों के बीच वैषम्य पंजाब के एक मामले[1] में सामने आया था। उसमें इस बात की ओर संकेत किया गया था कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा (संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम या हिन्दू अप्राप्तवयता आदि अधिनियम) के उपबन्धों के मुकाबले में उन आदेशों के बारे में, जो पारित किए जा सकते हैं, कोई निर्बन्धन नहीं लगाती और अप्राप्तवय के पिता को कोई विशेष प्रास्थिति प्रदान नहीं करती है।

निर्णयज विधि।

19.20 कलकत्ता के एक मामले[2] द्वारा यह भी निर्दशित किया गया है कि विभिन्न कानूनी उपबन्धों पर जो बल दिया जाता है उसमें भी परिवर्तन हुआ है। उस मामले में न्यायाधिपति एस० आर० चक्रवर्ती ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 19 के अधीन यह स्थिति है कि यदि पिता पांच वर्ष से अधिक आयु के अप्राप्तवय के शरीर का संरक्षक होने के अयोग्य नहीं है तो पिता संरक्षक[3] होना चाहिए, किन्तु हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 13 के अधीन इसकी प्रथम और एकमात्र विचारण अप्राप्तवय का कल्याण होगी। अतः संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम 1890 की धारा 19 को, जहां तक हिन्दुओं का सम्बन्ध है, हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 13 के अध्यधीन रहते हुए पढ़ा जाना होगा।

न्यायाधिपति पी० एन० मुखर्जी ने इस विषय पर और अधिक विस्तार से चर्चा करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 13 ने जहां तक हिन्दुओं का सम्बन्ध था, तात्विक परिवर्तन किए थे। इसने यह पूर्ण स्पष्ट कर दिया कि सभी मामलों में, संरक्षकता का दावा करने वाले "व्यक्ति की प्रास्थिति का विचार किए बिना", अप्राप्तवय का कल्याण सर्वोपरि विचारणीय होगा। उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन, जहां तक पिता का सम्बन्ध है, पांच वर्ष से अधिक की आयु के लड़के की दशा में, संरक्षकता के लिए उसका दावा सर्वोपरि विचारणीय होगा। संरक्षकता का दावा करने वाले अन्य व्यक्तियों की बाबत, उक्त अधिनियम ने अप्राप्तवय के कल्याण को सबसे आगे रखा और उसे सर्वोपरि विचारणीय आधार बनाया। उन्होंने आगे यह भी कहा कि अप्राप्तवय का कल्याण, यद्यपि धारा 19 के अधीन आने वाले मामलों में सर्वोपरि विचारणीय आधार नहीं है, तो भी वह सर्वथा महत्वहीन भी नहीं है। यह पिता के, संरक्षकता के दावे के विषय में भी विचारणीय आधारों में से एक आधार या एक तथ्य होगा और ऐसे आधारों में से एक आधार के रूप में यह अन्ततोगत्वा, पिता के अन्यथा सर्वोपरि दावे से भी अधिक जोरदार साबित हो सकता है।

19.21 इसमें सन्देह नहीं कि विभिन्न उपबन्धों में अभी भी न्यायालय को ही विशेषाधिकार प्राप्त है और सामाजिक धारणाओं में परिवर्तन से, न्यायिक प्रवृत्ति में परिवर्तन की पूर्वाशा की जा सकती है उदाहरण के लिए, हाल ही में उच्चतम न्यायालय ने उन विशेष परिस्थितियों का, जिनके अधीन माता को नैसर्गिक संरक्षक[4] माना जा सकता है, ध्यान रख जाने की आवश्यकता की ओर संकेत किया है।

संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन।

19.22 इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि यूनाइटेड नेशन्स कन्वेंशन आन दि स्टेटस आफ वूमैन[5] ने संरक्षकता की बाबत स्त्रियों के अधिकारों के बारे में निम्नलिखित उपबन्धों की सिफारिश की है—

(क) स्त्रियों को अपने अप्राप्तवय अपत्यों को संरक्षकता की बाबत और उन पर पैतृक प्राधिकार का प्रयोग करने के सम्बन्ध में, जिसके अन्तर्गत देख-रेख, अभिरक्षा, शिक्षा और भरण-पोषण भी आते हैं, पुरुषों के समान अधिकार और कर्त्तव्य होंगे।

(ख) पति-पत्नी दोनों को अपने अप्राप्तवय अपत्यों की सम्पत्ति के प्रशासन की बाबत समान अधिकार और कर्तव्य ऐसी विधिक परिसीमाओं के साथ होंगे जो यावत्सम्भव यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हों कि उसका प्रशासन अपत्यों के हित में किया जाता है।

---

1. अविनाश देवी बनाम डाक्टर खजान सिंह, ए० आई० आर० 1962 पंजाब 326, 62 पंजाब ला रिपोर्टर 354 (न्यायाधीश ए० एन० ग्रोवर)।
2. सुनील कुमार बनाम सती रानी, ए० आई० आर० 1969 कलकत्ता 573, 575, 577 पैरा 10 और 13 (न्यायाधीश पी० एन० मुखर्जी और एस० के० चक्रवर्ती)।
3. बिमला बाला, (1961) 65 कलकत्ता "एन० 1138 आई० एल० आर० (1961)" 2 कलकत्ता 40, उद्धृत किया।
4. नीजा भाई बनाम पठान खां, ए० आई० आर० 1971, उ० न्या० 315।
5. 20वां अधिवेशन, 13 फरवरी से 6 मार्च, 1967 तक (यू० एन० कमीशन आन स्टेटस आफ वूमैन)।

(ग) विवाह-विच्छेद, विवाह के बातिलकरण या न्यायिक पृथक्करण की दशा में अपत्यों की अभिरक्षा की बाबत कार्यवाहियों में अपत्यों का हित सर्वोपरि विचारणा होगी ।

(घ) विवाह-विच्छेद,-विवाह के बातिलकरण या न्यायिक पृथक्करण की दशा में, अपत्यों की अभिरक्षा और संरक्षकता या अन्य पैतृक अधिकारों की बाबत विनिश्चयों के सम्बन्ध में पुरुषों और स्त्रियों के बीच कोई विभेद नहीं किया जाएगा ।

यह परिवर्तित सामाजिक रुख का परिचायक भी है । फिर भी संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम[1] के अधीन यह स्पष्ट है कि पिता के पक्ष में पलड़ा भारी है ।

हिन्दू विवाह अधिनियम ।

19.23. यहां तक तो हमने संरक्षकता से सम्बन्धित विभिन्न कानूनी उपबन्धों के बारे में कहा । अब हम इस बात पर ध्यान दें कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 25-26 का जो कि अन्य बातों के साथ-साथ अभिरक्षा आदि के बारे में आदेशों के लिए उपबन्ध करती है, विदेशी विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में जब तक आश्रय नहीं लिया जा सकता, जब तक कि हम उसके लिए उपबन्ध नहीं कर देते । यह अभिनिर्धारित[2] किया गया है कि हिन्दू विवाह अधिनियम के उपबन्धों का न्यायालय द्वारा केवल तभी आश्रय लिया जा सकता है जब विवाह हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन विघटित किया गया हो और उसका आश्रय उस समय नहीं लिया जा सकता, जब विवाह किसी अन्य अधिनियम के अधीन जैसे कि मद्रास आलियसंतन ऐक्ट के अधीन, विघटित किया जाता है ।

मद्रास मरुमक्कत्तायम ऐक्ट, 1932 की धारा 15 में यह उपबन्ध किया गया है कि--

"माता अपने अप्राप्तवय अपत्यों के शरीर और सम्पत्ति की संरक्षक होगी, यदि उनका पिता मृत है या उनके माता-पिता का विवाह विघटित कर दिया गया है ।"

यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह उपबन्ध पक्षकारों को केवल वहां शासित करेगा जहां विवाह-विच्छेद उस अधिनियम के अधीन हुआ था ।

VII. इंग्लैंड का टोरक का मामला

टोरक बनाम टोरक का इंग्लैण्ड का मामला ।

19.24 उपर्युक्त चर्चा से उपबन्ध की आवश्यकता दर्शित होती है जिसमें वे मामले सम्मिलित होंगे जिनका निपटारा विवाह विषयक हेतुकों में सामान्यतया आनुषंगिक आदेशों द्वारा किया जाता है । प्रस्थापित विधि में आनुषंगिक आदेशों के बारे में किसी विनिर्दिष्ट उपबन्ध की आवश्यकता का दृष्टान्त इंग्लैंड के **टोरक** बनाम **टोरक**[3] के मामले द्वारा निदर्शित होता है । उस मामले में, पक्षकारों ने 1956 में हंगरी के विद्रोह के समय हंगेरी को छोड़ दिया था और अपने अपत्यों के साथ यूनाइटिड किंगडम आ गए थे । वहां उन्होंने विवाह कर लिया और राष्ट्रीयकृत ब्रिटिश प्रजाजन बन गए और इंग्लैंड में अपने अपत्यों के साथ तब तक रहे जब तक कि पति ने पत्नी को 1967 में छोड़ नहीं दिया और कनाडा में रहने के लिए नहीं चला गया । पत्नी और अपत्य इंग्लैंड में उसी घर में रहे आए जिसके कि पक्षकार संयुक्त स्वामी थे । 1972 में, पति ने जो हंगरी की विधि द्वारा, अभी तक उस देश का राष्ट्रिक था, इस आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए हंगरी न्यायालय में कार्यवाहियां प्रारम्भ की कि पक्षकार पांच वर्षों से पृथक् रह रहे थे । पत्नी उपस्थित हुई । हंगरी न्यायालय ने विवाह-विच्छेद को 'आंशिक डिक्री' सुना दी और पत्नी ने डिक्री सुनाई जाने के विरुद्ध अपील की सूचना दी और अपील फाइल कर दी ।

19.25 पत्नी ने विवाह-विच्छेद के लिए इंग्लैंड में भी अर्जी दी चूंकि इंग्लैंड के न्यायालय हंगरी डिक्री को तभी मान्यता देते यदि वह रिकोगनिशन आफ डाइवोर्सेज एण्ड लीगल सेप्रेशन्स ऐक्ट, 1971[4] की धारा 3(1) और धारा 5(1) के अधीन अन्तिम बना दी जाती और न्यायालय को उसके पश्चात् अन्तिम बना दी जाती और न्यायालय को उसके पश्चात् मैट्रोमोनियल प्रोसीडिंग्स एण्ड प्रापर्टी ऐक्ट, 1970 के अधीन सम्पत्ति से सम्बन्धित और पत्नी के लिए वित्तीय उपबन्ध से सम्बन्धित आदेश करने की अधिकारिता नहीं होती ।

---

1. ऊपर पैरा 19.18. ।
2. प्रमा बनाम एस० आनन्द सेट्टी, ए० आई० आर० 1973 मैसूर 69, 71 पैरा 17 (डिस्सोल्यूशन अण्डर दि मद्रास अलियसंतान ऐक्ट) ।
3. टोरक बनाम टोरक (1973) 1 डब्ल्यू० एल० आर० 1066 ।
4. रिकोगनीशन आफ डाइवोंसेज एण्ड लीगल सेप्रेशन्स ऐक्ट, 1971, सैक्शन 3(1) ।

पत्नी ने डाइवोर्सेज रिफोर्मस ऐक्ट, 1969 (जो कि उस समय प्रवृत्त विधि था) की धारा 2(1)(ङ) के अधीन विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी फाइल की । उसने डिक्री को आत्यन्तिक बनाने में शीघ्रता करने के लिए न्यायालय को विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए भी प्रार्थना की ।

इस प्रश्न पर कि न्यायालय को डिक्री प्रदान करनी चाहिए या नहीं और डिक्री को आत्यन्तिक बनाने में शीघ्रता करने के लिए विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए या नहीं, डिक्री प्रदान करते हुए, यह अभि-निर्धारित किया गया कि "इंग्लैंड के न्यायालय को विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने के लिए पत्नी की अर्जी पर अधिकारिता थी और ऐसा कोई आधार नहीं था जिस पर वह ऐसा करने से इन्कार कर सकता; और चूंकि न्यायालय को, यदि डिक्री इंग्लैंड के न्यायालय द्वारा प्रदान की गई होती तो मैट्रीमोनियल प्रोसीडिंग्स एण्ड प्रापर्टी ऐक्ट, 1970 के अधीन की अधिकारिता होती । अतः पत्नी उस ऐक्ट का उपयोग करने और उसका लाभ उठाने में असमर्थ होगी, यदि हंगरी की डिक्री इंग्लैंड की डिक्री के आत्यन्तिक बनाए जाने के पूर्व ही अन्तिम कर दी जाए और तदनुसार चूंकि ऐसा होने से उसके प्रति गंभीर अन्याय होगा और पति के प्रति कोई अन्याय नहीं होगा, यदि डिक्री को आत्यन्तिक बनाने में शीघ्रता की जाए । अतः डिक्री तुरन्त आत्यन्तिक बना दी जाए "।

इंग्लैंड के मामले में किए गए कथन ।

19.26 इस प्रकार सारवान न्याय किया गया था । किन्तु न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया[1] कि इस मामले में पैदा हुई स्थिति की, जो उन दो व्यक्तियों से सम्बन्धित थी जो कि इंग्लैंड में उन अपत्यों के साथ रह रहे थे, जिनका भरण-पोषण इंग्लैंड में हुआ था और इंग्लैंड में उनका विवाह वाला घर था—उस समय कल्पना नहीं की जा सकती थी जब रिकोगनीशन आफ डाइवोर्सेज एण्ड लीगल सेप्रेशन्स ऐक्ट, 1971 का प्रारूपण किया गया था । क्योंकि इस ऐक्ट का प्रभाव, इंग्लैंड में रह रहे कुटुम्ब के बारे में और इंग्लैंड में सम्पत्ति के बारे में (यदि विदेशी विवाह-विच्छेद ऐसा है जिसे ऐक्ट के अधीन मान्यता दी जानी है) इंग्लैंड के न्यायालय को अधिकारिता से वंचित करना था ।

इस मामले में, सौभाग्यवश विदेशी विवाह-विच्छेद अभी तक अन्तिम नहीं हुआ था किन्तु यदि वह अन्तिम हो जाता तो स्थिति कठिन हो जाती । इस मामले के तथ्यों में से एक से विनिर्दिष्ट उपबन्ध की आवश्यकता निर्देशित होती है । ऐसी स्थिति भारत में, या उस कारण से किसी अन्य देश में थी, पैदा हो सकती थी, यदि कहीं अन्यत्र विवाह-विच्छेद प्राप्त दम्पत्ति इस देश में वापस आ जाते हैं या इस प्रकार विच्छिन्न विवाह पक्षकारों में से कोई भी एक वापस जाता है ।

VIII. सिफारिशें

भरण-पोषण आदि के लिए आदेश के बारे में सिफारिश ।

19.27 उपर्युक्त चर्चा के दौरान हमने जो कुछ कहा है उसको ध्यान में रखते हुए, हम सिफारिश करते हैं कि भरण-पोषण आदि के बारे में और ऊपर चर्चित[2] अन्य आनुषंगिक विषयों के बारे में आदेश पारित करने के लिए, समुचित भारतीय न्यायालय को सशक्त करने वाला, इस प्रकार का उपबन्ध जिसका सुझाव पहले ही दिया जा चुका है, प्रस्थापित विधि में अन्तःस्थापित किया जाना चाहिए । वास्तव में, जो सुझाव हमने ऊपर दिया है वह धारा का प्रारूप नहीं है, किन्तु यह उसकी सभी अपेक्षाओं को पूरा करता है ।

किन्तु यह उपबन्ध विदेशी आनुषंगिक आदेश को मान्यता दी जाने के लिए उपबन्ध के अतिरिक्त होगा ।

1. टोरक बनाम टोरक (1973), डब्ल्यू० एल० आर० 1066 पृष्ठ 1069, भाग एच० पृष्ठ 1070, भाग ए० बी० ।
2. ऊपर पैरा 19.14 ।

अध्याय 20

अभिरक्षा के लिए आदेश विवाह विषयक न्यायालय द्वारा फेरफार

I. प्रारम्भिक

20.1 आनुषंगिक आदेशों[1] के विषय पर विचार करने के दौरान हमें इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर भी प्राप्त हुआ था कि संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 के अधीन शरीर की संरक्षकता के लिए आदेश उस न्यायालय द्वारा, जो कि विवाह विषयक अधिकारिता का प्रयोग करता है और अपत्यों की अभिरक्षा, शिक्षा और भरण-पोषण की बाबत आनुषंगिक आदेश पारित करता है, तत्पश्चात् पारित किए गए आदेश के अध्यधीन होगा या नहीं। दूसरे शब्दों में, क्या विवाह विषयक न्यायालय अपत्यों की अभिरक्षा के बारे में संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन सक्षम न्यायालय द्वारा पारित पूर्ववर्ती आदेश को उपान्तरित करने वाला आदेश पारित कर सकता है अथवा संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन सक्षम न्यायालय द्वारा पहले पारित आदेश ही उसी न्यायालय द्वारा फेरफार किए जाने के अधीन रहते हुए प्रभावी रहेगा। यह प्रश्न था जो कि हमारे द्वारा विचार किए जाने के लिए उठाया गया था। विवाह विषयक न्यायालय के आदेश और संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन आदेश के बीच वैषम्य।

20.2 अपत्यों की अभिरक्षा के लिए आदेश पारित करने के लिए विवाह विषयक न्यायालय को सशक्त करने वाला विशिष्ट उपबन्ध हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 26 में है, जो कि नीचे उद्धृत की गई है : हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 26।

"26. इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में न्यायालय अप्राप्तवय अपत्यों की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में, यथासम्भव उनकी इच्छा के अनुकूल, समय-समय पर ऐसे आदेश पारित कर सकेगा और डिक्री में ऐसे उपबन्ध कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे और डिक्री के पश्चात् इस प्रयोजन से अर्जी द्वारा किए गए आवेदन पर ऐसे अपत्य की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में समय-समय पर ऐसे आदेश और उपबन्ध कर सकेगा जो ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने की कार्यवाही के लम्बित रहते ऐसी डिक्री या अन्तरिम आदेश द्वारा किए जा सकते हैं और न्यायालय पूर्वतन किए गए ऐसे किसी आदेश या उपबन्ध को समय-समय पर प्रतिसंहृत या निलम्बित कर सकेगा अथवा उसमें फेरफार कर सकेगा[2]।"

20.3 इस प्रश्न द्वारा उठाए गए विवाद्यकों पर विचार करने में समर्थ होने के लिए, हमने इस विषय पर विधिक स्थिति का अध्ययन किया और उसकी परीक्षा करके अन्ततोगत्वा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह वर्तमान रिपोर्ट के क्षेत्र के बाहर है।

किन्तु, हमने सोचा कि चूंकि हमने इस विषय का अध्ययन किया है और चूंकि यह विषय कुछ महत्व का है और भविष्य में इसे आयोग द्वारा विचारार्थ लाया जा सकता है, अतः यह अनुपयुक्त नहीं होगा, यदि हम संक्षेप में इस प्रश्न के बारे में और उससे उठे विधि विवाद्यकों और वर्तमान स्थिति के बारे में बता दें।

20.4 हम प्रारम्भ में यह बताना चाहते हैं कि यह विषय वास्तव में साधारण प्रकृति का है, और संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम तक सीमित नहीं है। संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के सन्दर्भ में इस बारे में प्रश्न उठाया गया था, किन्तु इसमें वास्तव में अन्य न्यायालयों द्वारा पारित अभिरक्षा सम्बन्धी पूर्व आदेशों को, सुसंगत अधिनियमों द्वारा प्रदत्त शक्तियों के आधार पर उपान्तरित करने के लिए, विवाह विषयक न्यायालयों की सक्षमता से सम्बन्धित व्यापक प्रश्न अन्तर्वलित है। ऐसी शक्ति प्रदान करने वाली विधि किसी एक अधिनियमिति में नहीं पाई जा सकती। हम इस पहलू का उल्लेख इसलिए कर रहे हैं क्योंकि यदि भविष्य में और विधायन किए जाने का विचार किया जाता है तो यह पहलू इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कुछ उपयोगी प्रश्न की साधारण प्रकृति।

1. ऊपर अध्याय 19।
2. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 26।

होगा कि और विधायन करने की आवश्यकता है या नहीं । यदि और विधायन करना उचित समझा भी जाता है तो यह प्रथमदृष्ट्या, विदेशी विवाह-विच्छेदों को मान्यता देने से सम्बन्धित विधि में उपबन्ध का रूप नहीं ले सकता ।

संरक्षकता और अभिरक्षा ।

20.5 यह भी कहा जा सकता है कि भारत में विवाह-विषयक विधान एक अधिनियमिति में नहीं पाया जा सकता है । हमें उस सबकी पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं है जो हम पहले[1] ही इस रिपोर्ट में इस विषय पर बता चुके हैं ।

सुसंगत विधि उपबंधों के बारे में चर्चा करने से पूर्व हम यह भी स्पष्ट कर दें कि संरक्षकता और अभिरक्षा एक समान धारणाएं नहीं हैं । संरक्षक के पास अभिरक्षा नहीं हो सकती है और फिर भी अपनी संरक्षकता के आधार पर वह विवाह और शिक्षा के संबंध में शक्तियों का प्रयोग कर सकता है । "संरक्षकता मात्र अभिरक्षा से निश्चित रूप से अधिक व्यापक और अधिक मूल्यवान अधिकार है ।"[2] यद्यपि संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 24 के अधीन संरक्षक को अभिरक्षा[3] करनी होती है किन्तु दोनों धारणाएं एक समान नहीं हैं ।

इन प्रारंभिक कथनों के पश्चात् हम वर्तमान विधि पर विचार करेंगे ।

II. वर्तमान विधि

विभिन्न उपबन्ध ।

20.6 किसी व्यक्ति को अभिरक्षा या संरक्षकता या दोनों से संबंधित कार्यवाहियां विभिन्न विधायी और अन्य उपबंधों के अधीन आती हैं और उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से संस्थित किया जा सकता है । उनमें प्रमुख ये हैं :—

(i) संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890;

(ii) हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षक अधिनियम, 1956;

(iii) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 97 और 98 के उपबंध;

(iv) बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट;

(v) संरक्षकों को नियुक्त करने की चार्टरित उच्च न्यायालयों को आरंभिक अधिकारिता;

(vi) सिविल न्यायालय में वाद;

(vii) विवाह विषयक विधान, जैसे, हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 26 और तुलनीय अन्य विधिक उपबंध[4] ।

इस अध्याय में जो प्रमित प्रश्न विचारणीय था, उससे यह विवाद्यक पैदा होता है कि ऊपर (vii) के अधीन कोई आदेश उपर्युक्त (i) से लेकर (vi) तक के अधीन किए गए आदेश को किस सीमा तक उपान्तरित कर सकता है ।

राज्य विधान के अधीन किसी न्यायालय की "प्रतिपाल्यता" विधि की एक और रीति है । सुसंगत राज्य अधिनियम के अधीन, कोई भी, अप्राप्तवय समुचित कार्रवाई द्वारा, उस अधिनियम के उपबंधों के अधीन न्यायालय का प्रतिपाल्य बनाया जा सकता है । किन्तु, अधिकांश मामलों में, उन अधिनियमों के अधीन किए गए आदेश, व्यवहार में, अप्राप्तवय के शरीर पर नियंत्रण पर प्रभाव नहीं डालते और इसलिए हम इन अधिनियमों के बारे में विचार नहीं करेंगे ।

संरक्षक और प्रतिपाल्य आदि, अधिनियम ।

20.7 जहां तक शरीर की संरक्षकता की बात है, हम कह सकते हैं कि अप्राप्तवय को ऐसी संरक्षकता स्वीय विधि के सुसंगत नियमों से शासित होती है । किन्तु, कतिपय दशाओं में वह संरक्षकता संबंधी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा प्रदत्त की जा सकती है । इस विषय पर मुख्य अधिनियम संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 है । हम पूर्ववर्ती अध्याय[5] में, इसके उपबंधों के बारे में जहां तक वे इस रिपोर्ट के प्रयोजनों के लिए तात्विक है पहले ही चर्चा कर चुके हैं ।

1. ऊपर अध्याय 5 ।
2. **कुमारस्वामी** बनाम **राजमल**, ए० आई० आर० 1957 मद्रास 563, 567, पैरा 13 ।
3. संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 24 ।
4. ऊपर पैरा 20.2 ।
5. ऊपर अध्याय 19 ।

वर्तमान प्रयोजन के लिए, यह कहना पर्याप्त होगा कि उस अधिनियम की धारा 7 के अधीन, न्यायालय किसी व्यक्ति को अप्राप्तवय के शरीर या उसकी सम्पत्ति का संरक्षक नियुक्त कर सकता है। न्यायालय का यह समाधान अवश्य होना चाहिए कि ऐसी नियुक्ति अप्राप्तवय के कल्याण के लिए होगी। किन्तु यह नियुक्ति उस व्यक्ति की संरक्षकता में, जो विल द्वारा या अन्य लिखत द्वारा न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया है या जिसे न्यायालय द्वारा घोषित किया गया है, बाधा नहीं डाल सकती।

जहां तक अभिरक्षा के अधिनिर्णय का प्रश्न है, संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 के अधीन अधिकारिता केवल वहीं उत्पन्न होती है वहां प्रतिपाल्य को संरक्षक की अभिरक्षा में लौटाने के आदेश के लिए आवेदन किया जाता है और जहां यह अभिकथित किया जाता है कि प्रतिपल्य ने संरक्षक की अभिरक्षा छोड़ दी है या उसे उसकी अभिरक्षा से हटा लिया गया है। लौटाने के लिए आदेश केवल तभी किया जाता है जब अप्राप्तवय के कल्याण[1] की दृष्टि से उसे लौटाया जाना चाहिए।

20.8 हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1950 प्रथमतः नैसर्गिक संरक्षकों से संबंधित है न कि न्यायालय की नियुक्ति किए जाने से, हालांकि धारा 13, जो कि संरक्षकों को नियुक्त करने के लिए सिद्धान्त का उपबंध करती है, इस प्रकार शब्दांकित की गई है कि वह न्यायालयों द्वारा नियुक्त संरक्षकों को भी लागू हो। जहां तक नैसर्गिक संरक्षकों का प्रश्न है, धारा 6, जहां तक वह तात्विक है, यह उपबंध करती है कि हिन्दू अप्राप्तवय के, उसके शरीर के संबंध में नैसर्गिक संरक्षक निम्नलिखित हैं :-- हिन्दू अप्राप्तवयता आदि, अधिनियम।

(क) किसी लड़के या अविवाहित लड़की की दशा में--पिता और उसके पश्चात् माताः परन्तु जिस अप्राप्तवय ने पांच वर्ष की आयु पूरी नहीं की हो उसकी अभिरक्षा मामूली तौर पर माता के हाथ में होगी;

(ख) अधर्मज लड़के या अधर्मज अविवाहिता लड़की की दशा में--माता और उसके पश्चात् पिता;

(ग) विवाहिता लड़की की दशा में--पति।

असंहिताबद्ध हिन्दू विधि के अधीन, जहां नैसर्गिक संरक्षक जीवित नहीं हैं, वहां संरक्षक[2-3] की नियुक्ति के लिए न्यायालय में, जो कि राजा के अधिकारों का प्रतिनिधित्व करता है पहुंचा जाना चाहिए। इस प्रकार यह सिद्धान्त कि संरक्षक की नियुक्ति शासन करने वाली सत्ता निहित होती है, हिन्दू विधि[4] के लिए अज्ञात नहीं है। वर्तमान में, इस अधिकारिता का प्रयोग संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अधीन किया जाता है, जिसके उपबन्धों की व्यावृत्ति स्पष्ट रूप से हिन्दू अप्राप्तवयता आदि, अधिनियम द्वारा की गई है।

20.9 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबन्ध--धारा 97 और 98--सक्षम मजिस्ट्रेट को कतिपय मामलों में अभिरक्षा के लिए आदेश पारित करने के लिए सशक्त करती है। ये धाराएं मुख्य रूप से अपहृत व्यक्तियों और अनुचित प्रयोजनों के लिए अवैध रूप से निरुद्ध किए गए व्यक्तियों के लिए हैं। दण्ड प्रक्रिया संहिता।

20.10 कभी-कभी बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट का आश्रय, अप्राप्तवय की अभिरक्षा के बारे में आदेश अभिप्राप्त करने के लिए लिया जाता है इसमें अन्तर्निहित सिद्धान्त[5] न्यायालय[6] के समक्ष लाए गए व्यक्ति का संरक्षण और कल्याण है। बन्दी प्रत्यक्षीकरण।

कामन ला में, एक बार पिता या संरक्षक के नियंत्रण से बाहर हो जाने पर, अप्राप्तवय को केवल ऐसी बन्दी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करके ही प्रत्यावर्तित किया जा सकता है जिसके द्वारा अप्राप्तवय के भारसाधक व्यक्ति से, उसे पेश करने की और उसका निरोध न्यायोचित ठहराने की अपेक्षा की गई हो यदि अपत्य

---

1. देखिए--
   (क) रोज़ी जेकब बनाम जेकब, ए० आई० आर० 1973 उ० न्या० 2090।
   (ख) पेमला विलियम्स बनाम पैट्रिक मार्टिन्स, ए० आई० आर० 1970 मद्रास 427।
2. गुलबाई, आई० एल० आर० 32 मुम्बई 560।
3. थोयीमल बनाम मुप्पाना, (1915) आई० एल० आर० 38 मद्रास 1125, 1126 न्यायाधीश सदाशिव अय्यर।
4. चेनप्पा बनाम चेनप्पा, ए० आई० आर० 1940 मद्रास 140 में (मुख्य न्यायाधीश लीच) उद्धृत मेक नाटन्स का प्रीसीडेंट्स एण्ड प्रिंसिपल्स आफ हिन्दू ला का उद्धरण देखिए।
5. सोराबीबी बनाम अब्दुल रज़ाक, (1911) 12 मुम्बई एल० आर० 891।
6. गोहर बेगम बनाम सुग्गी, ए० आई० आर० 1980, उ० न्या० 93, 96, पैरा 10।

स्वनिर्णय की आयु (लड़कों की दशा में 14 वर्ष और लड़कियों की दशा में 16 वर्ष) से अधिक आयु के हैं तो अप्राप्तवय[1] की इच्छा के विरुद्ध पिता या संरक्षक के पक्ष में अधिकार के रूप में रिट जारी नहीं किया जाएगा।

भारत में भी, संरक्षक अप्राप्तवय के शरीर की अभिरक्षा का हकदार है जिसे वह सिवाय तब के जब उसके अधिकारों को विशेष विधि द्वारा या न्यायालय के आदेश द्वारा उपांतरित कर दिया जाए। बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट द्वारा या संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 25 के अधीन आवेदन द्वारा प्राप्त कर सकता है।

चार्टरित उच्च न्यायालय।

20.11 चार्टरित उच्च न्यायालय भी विशेष अधिकारिता का प्रयोग करते हुए कोई भी ऐसा आदेश कर सकता है जो वह अप्राप्तवय की संरक्षकता के मामले में ठीक समझे। चार्टरित उच्च न्यायालयों को उनके चार्टरों या लेटर्स पेटेन्टों द्वारा उन्हें प्रदत्त की गई विशेष और अंतर्निहित अधिकारिता प्राप्त है, जो कि अन्य न्यायालय को प्राप्त नहीं है। वे ऐसी अधिकारिता का उपभोग संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 द्वारा प्रदत्त अधिकारिता के अतिरिक्त भी कर सकते हैं, अर्थात् उस अधिनियम द्वारा किसी उच्च न्यायालय को प्रदत्त उसकी मामूली सिविल अधिकारिता के अतिरिक्त। हम इन उच्च न्यायालयों को चार्टरित उच्च न्यायालयों के रूप में निर्दिष्ट कर रहे हैं, क्योंकि उन्हें यह अधिकारिता अपने चार्टर या लेटर्स पेटेन्ट के आधार पर प्राप्त हैं।

ऊपर उल्लिखित अधिकारिता विस्तृत है। उदाहरण के लिए, अब यह सुस्थापित है कि हिन्दू विधि के अधीन, अविभाज्य मिताक्षरा कुटुम्ब[2] की सम्पत्ति में, किसी बालक के हित के संबंध में कोई संरक्षक उचित रूप से नियुक्त नहीं किया जा सकता है। किन्तु चार्टरित उच्च न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं।

हाई कोर्टस ऐक्ट (24 और 25 विक्टोरिया सी० 104) के कानून के अधीन स्थापित उच्च न्यायालयों की दशा में, इस अधिकारिता की संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 3 द्वारा स्पष्ट रूप से व्यावृत्ति की गई है।

हाई कोर्ट्स ऐक्ट[3] की धारा 9 द्वारा यह उपबंध किया गया था कि उच्च न्यायालय ऐसी सभी शक्तियों का प्रयोग करेंगे जो लेटर्स पेटेन्ट द्वारा प्रदान की जाएंगी, और उसमें अन्यथा उपबंधित के सिवाया, उन्हें उच्चतम तथा और सदर न्यायालयों में निहित सभी अधिकारिता होगी और वे उसका प्रयोग करेंगी। 1856 के लेटर्स पेटेन्ट के खंड 17 में यह अधिकथित था कि उच्च न्यायालय की प्रान्त में बच्चों और अन्यों के सम्बन्ध में वैसी ही शक्ति होगी जो लेटर्स पेटेन्ट के प्रकाशन के ठीक पूर्व उच्च न्यायालय में निहित थी, अर्थात् वह शक्ति जोकि उसे 1862 के लेटर्स पेटेन्ट के खंड 16 के अधीन थी, जिसमें अधिकथित था कि न्यायालय को वही अधिकारिता होनी चाहिए जो उस समय उच्चतम न्यायालय में निहित थी। उच्चतम न्यायालय में निहित शक्तियां वे ही शक्तियां थीं जो इंग्लैन्ड में चान्सरी न्यायालयों के पास थीं—फोर्ट विलियम में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना करने वाले 1974 के चार्टर का खंड 25, मद्रास में सुप्रीम कोर्ट का गठन करने वाले 1800 के चार्टर का खंड 32 और मुम्बई में सुप्रीम कोर्ट से संबंधित 1823 के चार्टर का खंड देखिए।

जैसा कि ऐनी बेसेन्ट बनाम **नरायनैया**[4] में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा मत व्यक्त किया गया था, "अप्राप्तवयों की संपदाओं और शरीरों के संबंध में अधिकारिता······पेरेन्स पेट्रिया के रूप में प्रतिभू के लिए कार्य करने वाले इंग्लैन्ड के लार्ड चान्सलर द्वारा प्रयोक्तव्य थी, जब सुप्रीम कोर्ट······संस्थित किया गया था।"

---

1. देखिए—
   (क) **आर० बनाम क्लार्क**, रि रेस, (1857) 119 ई० आर० 1217;
   (ख) **आर० बनाम हावेस एक्स पी० बार फोर्ड**, (1860) 3 ई० एण्ड ई० 332;
   (ग) **आर बनाम मोनहिल**, (1836) 111 ई० आर० 922, 927।
2. **घरीबुल्ला बनाम खालप सिंह**, (1903) आई० एल० आर० 25 इलाहाबाद 407; एल० आर० 30 आई० ए० 165 (पी० सी०)।
3. दि हाई कोर्टस ऐक्ट, 24 और 25 विक्टोरिया, सी० 104।
4. **ऐनीबेसेन्ट बनाम नरायनैया**, (1913) 25 एम० एल० जे० 661, 686 ए० आई० आर० 1915 मद्रास 157 (मुख्य न्यायाधीश व्हाइट और न्यायाधीश ओल्डफील्ड)।

इंग्लैंड में, चान्सरी कोर्ट को उचित मामला होने पर अपत्यों के लिए, चाहे ऐसे अपत्यों के पास सम्पत्ति हो या नहीं,[1—2] संरक्षक नियुक्त करने की शक्ति थी और है।

20.12 इस अधिकारिता के प्रति बहुधा निदश, किसी व्यक्ति को "न्यायालय का प्रतिपाल्य" बनाने के लिए अधिकारिता के रूप में किया जाता है। न्यायालय की प्रतिपाल्यता अन्य प्रकार के आदेशों से कहां तक भिन्न होती है, जहां तक कि यदि किसी बालक को न्यायालय का प्रतिपाल्य बनाया जाता है, तो उसकी अभिरक्षा न्यायालय में निहित होती है। निस्संदेह, व्यावहारिक कारणों से किसी बालक की देख-रेख और नियंत्रण किसी व्यक्ति को दे दिया जाता है—समुचित मामलों में यह आधुनिक समयों में स्थानीय प्राधिकारी को भी दिया जा सकता है, किन्तु ऐसे भारसाधन में रखा गया व्यक्ति या प्राधिकारी न्यायालय के अभिकर्ता की प्रकृति का होगा, जो प्रतिपाल्य के दिन प्रति दिन के अधीक्षण के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी होगा। उसे न्यायालय का मामले की प्रगति की सूचना बराबर देनी चाहिए और वह मार्ग-निदेशन एवम् सहायता[3] के लिए हमेशा न्यायालय में जा सकता है। प्रतिपाल्यता।

क्राउन के विशेषाधिकार से प्राप्त होने वाली और प्रत्येक वैयक्तिक मामले के गुणागुण पर प्रयोक्तव्य अधिकारिता होने के कारण, यह अधिकारिता शुद्ध राज्यक्षेत्रीय सीमाओं और मूल वंश के अंतर को कर सक जाती है।

न्या० लेटे[4] इस प्रतिपाल्यता संबंधी अधिकारिता के उद्गम का इस प्रकार पता लगाया है :

> "सारी प्रजा के प्रति राजनिष्ठा रखती है। क्राउन का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा को संरक्षण दे। ऐसा हमेशा अप्राप्तवयों अर्थात् इस समय 18 वर्ष से कम की आयु के व्यक्ति के प्रति विशेष रूप से है और रहा है। और ऐसा इसलिए है क्योंकि बालक विशेष रूप से असुरक्षित होते हैं। उनके अंदर प्रतिरक्षा करने की शक्ति नहीं होती है जो कि अन्य व्यक्तियों में होती है और इसलिए उन्हें विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, वे देश के भविष्य के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभूति होते हैं, इसलिए 'पेरेन्स पेट्रिया' के रूप में क्राउन ने संरक्षण को अपनी शक्तियों और कर्तव्यों को न्यायालयों को प्रत्यायोजित कर दिया।"

20.13 इस प्रकार, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कलकत्ता[5] उच्च न्यायालय की मूल शाखा को किसी ऐसे अप्राप्तवय के बारे में, जो आमतौर से उसकी साधारण आरंभिक सिविल अधिकारिता के भीतर निवास करता है और उनके बारे में भी, जो प्रेसीडेन्सी के बंगाल डिविजन के भीतर निवासी हैं, या "ब्रिटिश प्रजा" हैं, संरक्षक की नियुक्ति के लिए आवेदन ग्रहण करने की अधिकारिता है। संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 3 द्वारा परिरक्षित लेटर्स पेटेन्ट के खंड 17 के अधीन, अपत्यों पर अधिकारिता, ब्रिटिश प्रजा की बाबत प्रेसीडेन्सी[6] के बंगाल डिवीजन के भीतर सभी अपत्यों के शरीर और संपदा पर प्रवृत्त है।

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम उच्च न्यायालय की इस विशेष शक्ति को छीनता नहीं है। अधिनियम की धारा 3 उपबंध करती है कि इस अधिनियम की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह स्टेच्यूट्स 24 और 25 विक्टोरिया, (भारत में उच्च न्यायालय स्थापित करने के लिए अधिनियम) के अध्याय 104 के अधीन स्थापित किसी उच्च न्यायालय द्वारा धृत किसी शक्ति पर प्रभाव डालती है अथवा उसे छीनती है"। इस शक्ति की हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम[7] द्वारा भी व्यावृत्ति की गई है।

20.14 अप्राप्तवय और उसकी संपदा के कल्याण की सर्वोपरि विचारणा के अध्यधीन रहते हुए, चार्टरित उच्च न्यायालय, ऊपर निर्दिष्ट विशेष अधिकारिता के प्रयोग में, कोई भी ऐसा आदेश कर सकता है जो वह चार्टरित उच्च न्यायालय।

1. रि स्पेन्स, 2 फिल० 247, 252।
2. रिपिलन, 2 डी० जी० एण्ड एम० 457, 481 एन० आई० सी०।
3. क्रास, "वार्ड्स आफ कोर्ट" 83 एल० क्यू० आर० 201 देखिए।
4. रेक्स (एक अप्राप्तवय), (1975) 1 आल ई० आर० 697।
5. लवजीय पटेल, आई० एल० आर० (1943) 2 कलकत्ता 554 ए० आई० आर० 1944 कलकत्ता 433, 438, 439 (न्यायाधीश दास) के मामले में।
6. ताराचन्द्र घोष, ए० आई० आर० 1930 कलकत्ता 598 के (न्यायाधीश लार्ड विलियम)।
7. हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 देखिए।

अभिरक्षा के लिए वाद ।

ठीक समझे[1] । चार्टरित उच्च न्यायालय की, अधिकारिता संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम से स्वतंत्र होने के कारण, वह उस अधिनियम के विनिर्दिष्ट उपबंधों द्वारा निर्बंधित नहीं है ।

20.15 ऊपर उल्लिखित प्रकृति की कार्यवाहियों के अतिरिक्त ऐसा प्रतीत होता है कि अभिरक्षा के लिए कोई वाद फाइल किया जा सकता है । ऐसा वाद पिता द्वारा कहाँ तक फाइल किया जा सकता है यह संविवाद का विषय है । मुम्बई दृष्टिकोण[2] के अनुसार, पिता द्वारा अपने अपत्यों की अभिरक्षा के लिए वाद विशेष रूप से इस कारण चलाने योग्य है कि संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 19 के कारण, उस अधिनियम के अधीन, पिता की प्रेरणा पर कोई उपचार विद्यमान नहीं है ।

दूसरी ओर मद्रास के उच्च न्यायालय[3] के अनुसार, जिला न्यायालय से भिन्न मुफस्सिल न्यायालय को पिता द्वारा अपने अप्राप्तवय अपत्यों को अभिरक्षा के लिए लाए गए वाद को ग्रहण करने की कोई अधिकारिता नहीं है ।

हमें इस विवाद के और ब्यौरे में जाने की आवश्यकता नहीं है । किन्तु यह प्रतिपादना कि कतिपय परिस्थितियों में अभिरक्षा के लिए वाद लाया जा सकता है, विवाद्य नहीं है । ऐसे वाद के बारे में, प्रान्तीय लघु वाद अधिनियम[4] में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है ।

विवाद विषयक मामलों में आनुषंगिक आदेश ।

20.16 अंत में, विवाह विषयक विधान में, सामान्यतया विवाह विषयक कार्यवाहियों के लंबित होने के दौरान और उनकी समाप्ति पर, दोनों अवस्थाओं में, विवाह के अपत्यों की अभिरक्षा के लिए आदेश पारित करने के लिए, न्यायालय को सशक्त करने वाले उपबंध अंतर्विष्ट हैं । जब विवाह विषयक अनुतोष के लिए डिक्री दी जाती है तो न्यायालय द्वारा ऐसे अनुतोष की अभिरक्षा, विनिर्दिष्ट रूप से ऐसे अनुतोष के लिए वचनबंधता के रूप में, ऐसे निबन्धनों पर, जो न्यायालय उचित समझे, प्रदान की जाती है । इस प्रकार का एक उदाहरण हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 26 में का उपबंध[5] है ।

III. विवादों की विविधता

विवादों की विविधता ।

20.17 बालकों को अभिरक्षा का उपबंध करने के लिए न्यायालय को सशक्त करने वाले उपबंधों का यह संक्षिप्त सार, विभिन्न न्यायालयों को प्राप्त शक्तियों की विविधता दर्शित करता है । यह भी कहा जा सकता है कि बालकों से संबंधित विधिक विवाद बहुत प्रकार के होते हैं और वे—

(i) स्वतंत्र रूप से, या (ii) विवाह विषयक कार्यवाहियों के लंबित होने पर, या (iii) माता-पिता के बीच विवाह विषयक कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप, उत्पन्न हो सकते हैं । विवाद स्वयं माता-पिता के ही बीच या माता-पिता (संयुक्त या विभाजित) और पर व्यक्तियों—जैसे कि-मातृ पितृ पक्ष के सम्बन्धियों और पितामह या पितामही या मातामह या मातामही के बीच हो सकता है । इस विषयवस्तु पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि बालक के पालन-पोषण के लिए कौन सबसे अधिक उपयुक्त है या किसे इस रूप में रखा जाए या केवल मात्र असहमति की कोई विनिर्दिष्ट बात हो सकती है—उदाहरण के लिए, शिक्षा या भरण-पोषण[6] की बाबत ।

अभिरक्षा—विभाज्य अधिकार ।

20.18 "अभिरक्षा" विभाज्य अधिकार है, जो कि न्यायालय को, बालक से संबंधित कार्यवाहियों में, प्रतिबन्धों के अधीन रहते हुए अभिरक्षा के लिए आदेश करने में या अभिरक्षा में अंतर्निहित अधिकारों का माता-पिता अथवा अन्य पक्षकारों के बीच विभाजन करने में समर्थ बनाता है : उदाहरण के लिए 'ख' की देख-रेख और नियंत्रण के अध्यधीन रहते हुए 'क' को अभिरक्षा देकर, या 'क' अथवा 'ख' अथवा 'ग' तक की देख-रेख और नियंत्रण अध्यधीन रहते हुए 'क' और 'ख' को अभिरक्षा देकर । ये क्रम चय न्यायालय को, माता-पिता

1. राजा आफ विजियानगारम बनाम दि सेक्रेट्री आफ स्टेट फार इण्डिया आई० एल० आर० (1937) मद्रास 383; ए० आई० आर० 1937 मद्रास 51, 76 ।
2. अचरज लाल बनाम चिमनलाल, (1916) आई० एल० आर० 40 मुम्बई 600, 605 ।
3. साथी बनाम रामण्डी, 1919 आई० एल० आर० 42 मद्रास 647; 37 एम० एल० जे० 93, ए० आई० आर० 1920 मद्रास 937 (एफ० बी०) ।
4. प्रान्तीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम, 1887 आर्टिकल 37 देखिए—"अप्राप्तवय की अभिरक्षा ......के लिए वाद" ।
5. पूर्ववर्ती अध्याय 19 और इस अध्याय का प्रारम्भिक पैरा देखिए ।
6. ग्रान्ट, फैमली ला (1970), पृष्ठ 132, 133 ।

दोनों का और अन्य ऐसे व्यक्तियों को जिनका सम्बन्ध हो सकता है किसी बालक के भरण-पोषण के लिए, जहां ऐसा उपबंध लाभकारी होने की संभावना है, हिस्सा या धन देने में समर्थ बनाते हैं ।

IV. विवाह विषयक न्यायालय की शक्तियां

20.19 अब हम इस अध्याय में विचार किए जाने वाले विनिर्दिष्ट प्रश्न पर आते हैं, अर्थात् संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 के अधीन, न्यायालय द्वारा पारित पूर्ववर्ती आदेश को उपांतरित करने के लिए विवाह विषयक न्यायालय की शक्ति की सीमा । वभिन्न अधिनियमितियों के अधीन, विवाह विषयक सक्षम न्यायालय से संबंधित कानूनी उपबंध इस बाबत वहां तक मौन जहां तक कि वे दूसरे न्यायालय के पूर्ववर्ती आदेश में फेरफार करने के लिए विवाह विषयक न्यायालय को, विनिर्दिष्ट रूप से न तो अनुज्ञा देते हैं और वे ऐसा करने से उसको प्रतिषिद्ध करते हैं । कानूनी उपबंध।

20.20 जहां तक हम अभिनिश्चित कर सके हैं, यह प्रश्न कि विवाह विषयक न्यायालय संरक्षकता न्यायालय द्वारा पारित आदेश में फेरफार कर सकता है या नहीं, भारतीय विवाह विषयक विधान के अधीन रिपोर्ट किए गए किसी भी मामले में उत्पन्न हुआ प्रतीत नहीं होता है। निर्णयज विधि ।

निसंदेह, संरक्षकता न्यायालय को अपने पूर्ववर्ती आदेश में फेरफार करने की शक्ति सुमान्य है । संरक्षकता आदि अधिनियम के अधीन किसी बालक की अभिरक्षा के बारे में आदेश हमेशा स्थायी प्रकृति के होते हैं। वे व्यक्ति, जो अप्राप्तवय में हितबद्ध होते हैं, ऐसे आदेश में, जब कभी आवश्यकता हो[1-2] उपांतरण या परिवर्तन कराने के लिए न्यायालय को आवेदन करने के लिए स्वतंत्र होते हैं ।

इसी प्रकार विवाह विषयक न्यायालय की अपने ही आदेश में फेरफार करने की शक्ति विवादग्रस्त नहीं है । पारसियों के बीच के कलकत्ता वाले एक मामले में यह अधिकथित किया गया था कि विवाह विषयक कार्यवाहियों[3] में पारित किसी आनुषंगिक आदेश के कारण ही, पिता को अपत्यों की अभिरक्षा दी गई है और उसके विरुद्ध जहां तक अपत्यों का संबंध है, कुछ नहीं है । यह नहीं कहा जा सकता कि उसे अपत्यों की अभिरक्षा के विषय में पूर्ण अध्यारोही अधिकार है । इस मामले में, अभिरक्षा के लिए आदेश ऐसे वाद में पारित किया गया था, जिसमें न्यायिक पृथक्करण की मंजूरी पत्नी को दी गई थी ।

ऐसा प्रतीत होता है कि उस स्कूल के बारे में, जिसमें अपत्यों को शिक्षा दी जानी चाहिए थी, माता-पिता के बीच में विभेद के कारण, आदेश के पुनर्विलोकन के लिए आवश्यकता उत्पन्न हुई। यह दृष्टिकोण अपनाते हुए कि पूर्ववर्ती आदेश को पुनर्विलोकित किया जा सकता है, उच्च न्यायालय ने यह कहा कि पारसी विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 49 के अधीन, इस स्थिति पर, सभी परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए और अपत्यों के कल्याण के संदर्भ में, विचार किया जाना होगा ।

20.21 ऐसा प्रतीत होता है कि वह प्रश्न, जिसके बारे में इस अध्याय में चर्चा की गई है, किसी इंग्लैण्ड के मामले में प्रत्यक्ष रूप से सामने नहीं आया है, यद्यपि मजिस्ट्रेट के पूर्ववर्ती आदेश में फेरफार करने की उच्च न्यायालय की शक्ति के बारे में निर्णयज विधि उपलब्ध है। एक मामले में, उच्च न्यायालय से, उसकी प्रतिपाल्य अधिकारिता के प्रयोग में, मजिस्ट्रेट[4] के न्यायालय द्वारा पहले किए गए किसी आदेश में उपांतरण कराने के लिए अनुरोध किया गया था। न्या० स्टाम्प ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि उसके पास मामले को सुनने की अधिकारिता है किन्तु उसे उसका प्रयोग केवल आपवादिक परिस्थितियों में ही करना चाहिए । इंग्लैंड के मामले ।

यह प्रतीत होता है कि ऐसी अधिकारिता का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा वहीं किया जा सकता है जहां मामले में विशेष उलझन हो[5] या जहां उच्च न्यायालय की अधिकारिता अधिक व्यापक, प्रभावोत्पादक या

1. सरस्वती श्रीपद, आई० एल० आर० (1941) मुम्बई 455, 43 मुम्बई एल० आर० 791, ए० आई० आर० 1941 मुम्बई 103।
2. **रतन अमोह सिह बनाम कमलजीत कौर**, ए० आई० आर० 1961 पंजाब 51, 54, पैरा 17 ।
3. पारसी विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1936 की धारा 49 ।
4. रि० पी० (1968) 2 आल ई० आर० 229।
5. रि० पी० (1968) 1 डब्ल्यू० एल० आर० 1976 ।

सुविधाजनक हो या जहां मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसा अनुतोष देते हुए पारित आदेश को, जिसको देने की मजिस्ट्रेट की शक्ति नहीं थी, अनुपूरित कराना आवश्यक है। इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि प्रतिपाल्य अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालय, अधिकारिता से बाहर बालक को ले जाने से किसी व्यक्ति का प्रतिषेध करने वाला आदेश जारी कर सकता है। इंग्लैण्ड के एक मामले[1] में ऐसा आदेश, मां को अभिरक्षा देने का निर्णय देने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश को प्रभावी करने के लिए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया था।

V. निष्कर्ष

दो दृष्टिकोण संभव हैं।

20.22 चूंकि निर्णयज विधि उस प्रश्न पर कोई प्रकाश नहीं डालती जिसका हम अब अन्वेषण कर रहे हैं, अतः यह प्रश्न प्रथम प्रभाव का है और उसके बारे में इसी प्रकार से विचार किया जाना था। अब यह प्रतीत होता है कि इस प्रश्न के बारे में दो दृष्टिकोण संभव हैं। एक ओर संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम और अन्य समान उपबंधों के अधीन पहले पारित आदेश उस समय विद्यमान परिस्थिति का विचार करते हुए पारित किया जा सकता था। यदि विवाह के विघटन के कारण या न्यायिक पृथक्करण के प्रदान किए जाने के कारण परिस्थितियों में तात्विक परिवर्तन हुआ है तो एक नया तथ्यात्मक तत्व प्रस्तुत हुआ जो कम से कम यह अपेक्षा रखता है कि उस पर विवाह विषयक न्यायालय द्वारा विचार किया जाना चाहिए। इस तर्क पर यह दलील दी जा सकती थी कि उस न्यायालय की अधिकारिता को इतना व्यापक माना जाना चाहिए जिससे कि वह अभी निर्देशित किए गए तथ्य-संबंधी तत्व को ध्यान में रख सके। दूसरी ओर नए आदेश का अभिप्राय दूसरे न्यायालय के आदेश का उपान्तरण करना होगा और चूंकि प्रथमदृष्टया यह धारा इस विषय पर कुछ नहीं कहती है, अतः यह तर्क किया जा सकता है कि यह किसी भी ऐसे मार्ग को अपनाए जाने की अनुज्ञा नहीं देती है।

हमारे लिए इस प्रश्न पर किसी राय का प्रकट करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि किसी भी दशा में यह विषय इस रिपोर्ट की परिधि के बाहर का है। जब कभी यह प्रश्न विचारार्थ उपस्थित होता है, तो कई पहलुओं को ध्यान में रखा जाना होगा। इस अध्याय में विधिक विवाद्यकों की संक्षिप्त चर्चा इस समस्या की परिधि और मात्रा को मोटे तौर पर उपदर्शित करेगी, किन्तु जैसा कि हम पहले ही संकेत कर चुके हैं, यह समस्या इस रिपोर्ट की परिधि से बाहर की है।

1. रि० एच० (1966) 1 आल ई० आर० 952।

अध्याय 21

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 का उपांतरण

21.1 हमारी सिफारिशों में ऐसे बहुत से विषय हैं जिनके बारे में, वर्तमान में, उन कतिपय कानूनी उपबंधों में जिनके प्रति हम पहले ही निर्देश कर चुके हैं, उल्लेख है। पारिणामिक संशोधन के रूप में, यह आवश्यक है कि उन उपबंधों का उपांतरण किया जाए, अर्थात् सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 और साक्ष्य अधिनियम, 1871 की धारा 41—जिससे कि उन विषयों के संबंध में, जो हमारी सिफारिशों के अन्तर्गत आएंगे, जबकि उन्हें कानूनी रूप दिया जाएगा इनकी प्रयुक्ति को वर्जित किया जा सके। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 का उपांतरण।

21.2 यह स्पष्ट है कि जहां तक विवाह-विच्छेद की डिक्रियों की मान्यता की बाबत सिफारिशों में किसी विषय पर कोई विनिर्दिष्ट उपबंध हैं, वह स्थिति अंततः रूप से सिफारिश किए गए उपबंधों द्वारा शासित होनी चाहिए न कि, यथास्थिति, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 या साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 के उपबंधों द्वारा। अतः पारिणामिक संशोधक की आवश्यकता नहीं है। पारिणामिक संशोधन के अभाव में अतिव्याप्ति होगी और इससे संभ्रम उत्पन्न हो सकता है।

54 Law/78—20

अध्याय 22

सिफारिशें

सिफारिशें ।

22.1 पूर्ववर्ती अध्यायों में की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए हम, इस रिपोर्ट[1] से संलग्न विधेयक में उपदर्शित दिशानिर्देशों पर पृथक विधि के अधिनियमन की सिफारिश करते हैं । यह विधेयक, जैसी कि इस आयोग की सामान्य पद्धति है स्थूल प्रारूप है, जो हमारी सिफारिशों को ठोस रूप में उपदर्शित करने के लिए आशयित है ।

हमने जो कुछ कहा है, उसे पुनः प्रकट कर दें, अर्थात् यदि हमारी सिफारिशें स्वीकार कर ली जाती हैं और विधेयक पुरःस्थापित किया जाता है तो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 की प्रयुक्ति का अपवर्जन करने वाले उपर्युक्त संशोधन की भी आवश्यकता[2] होगी ।

1. परिशिष्ट देखिए।

2. ऊपर अध्याय 20 ।

परिशिष्ट 1

विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करण की मान्यता विधेयक, 1976

1 (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम . . . . . . है। — संक्षिप्त नाम, और प्रारम्भ।

(2) इसका विस्तार, जम्मू-काश्मीर राज्य को छोड़कर, संपूर्ण भारत पर है।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त नियत करे।

2. इस अधिनियम में, —— — परिभाषा। इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8(3) से तुलना कीजिए।

(क) "देश" के अन्तर्गत यूनाइटिड किंगडम की कोलोनी या अन्य आश्रित राज्यक्षेत्र हैं किन्तु इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए कोई व्यक्ति ऐसे राज्यक्षेत्र का राष्ट्रिक केवल तभी माना जाएगा जब उस राज्यक्षेत्र में यूनाइटिड किंगडम के विधि से पृथक् नागरिकता या राष्ट्रीयता की विधि हो और वह उस विधि के अधीन उस राज्यक्षेत्र का नागरिक या राष्ट्रिक हो;

(ख) "कार्यवाही" के अन्तर्गत कोई ऐसा कार्य है जो विवाह के विघटन को प्रभावी करने के लिए पर्याप्त हो भले ही वह कार्य कितना भी अनौपचारिक हो, और भले ही उसके लिए कोई औपचारिकता या विधिक प्रक्रिया अपेक्षित हो या नहीं;

(ग) किसी प्राधिकारी के समक्ष से अन्यथा किसी कार्य द्वारा गठित कार्यवाही के संबंध में, संस्थित करने से उस कार्य का प्रारंभ अभिप्रेत है।

3. विदेशी विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों की विधिमान्यता को भारत में मान्यता दिए जाने की बाबत धारा 4 से 6 तक, धारा 7 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, प्रभावी होंगे अर्थात्, ऐसे विवाह-विच्छेद और विविधक पृथक्करण, जो कि —— — विदेशी विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों की मान्यता। इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 2 से तुलना कीजिए।

(क) भारत से बाहर किसी देश में न्यायिक या अन्य कार्यवाहियों द्वारा अभिप्राप्त किए गए हैं; और

(ख) उस देश के विधि के अधीन प्रभावी है।

4. (1) विदेशी विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता को मान्यता तभी दी जाएगी यदि उस देश में जिसमें वह अभिप्राप्त किया गया था कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को,—— — मान्यता के आधार।

(क) पति या पत्नी में से एक उस देश में आभ्यासिक रूप से निवासी था; या

(ख) पति या पत्नी में से एक उस देश का राष्ट्रिक था; या

(ग) पति पत्नी दोनों उस देश में अधिवसित थे।

(2) ऐसे देश के संबंध में जिसमें ऐसे राज्यक्षेत्र समाविष्ट हैं जिसमें विधि की विभिन्न पद्धतियां विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के विषय में प्रवृत्त हैं, उपधारा (1) के उपबंध (सिवाय उनके जो राष्ट्रीयता से संबंधित हैं) ऐसे प्रभावी होंगे मानो प्रत्येक राज्यक्षेत्र पृथक देश था।

5. (1) जहां प्रतिकार्यवाहियां की गई हैं, वहां मूल कार्यवाहियां में या प्रतिकार्यवाहियों में अभिप्राप्त किए गए विदेशी विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता को मान्यता तभी दी जाएगी यदि मूल कार्यवाहियों के या प्रतिकार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख के संबंध में धारा 4 की उपधारा (1) के खंड (क) या (ख) या (ग) की अपेक्षाएं पूरी की गई हैं। — प्रतिकार्यवाहियां और विवाह-विच्छेद में संपरिवर्तित पृथक्करण। इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 4 से तुलना कीजिए।

(2) जहां किसी ऐसे विधिक पृथक्करण को जिसकी विधिमान्यता धारा 4 या इस धारा की उपधारा (1) के उपबंधों के आधार पर मान्यता पाने की हकदार है, विवाह-विच्छेद में, उस देश में जहां वह अभिप्राप्त किया गया था, सम्परिवर्तित किया जाता है, वहां विवाह-विच्छेद की विधिमान्यता को मान्यता दी जाएगी चाहे वह स्वयं उन उपबंधों के आधार पर मान्यता पाने का हकदार हो या नहीं।

इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 5 से तुलना कीजिए।

6. (1) यह विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए कि विदेशी विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण धारा 3 से लेकर 5 तक के उपबंधों के आधार पर मान्यता पाने का हकदार है या नहीं, कार्यवाहियों में (चाहे स्पष्ट रूप से या विवक्षा द्वारा) तथ्य का निकाला गया कोई ऐसा निष्कर्ष, जिसके परिणामस्वरूप विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण अभिप्राप्त किया गया था और जिसके आधार पर अधिकारिता उन कार्यवाहियों में ग्रहण की गई थी ।

(क) यदि पति पत्नी दोनों ने कार्यवाहियों में भाग लिया था, तो पाए गए तथ्यों का निश्चायक सबूत होगा और

(ख) किसी अन्य मामले में उस तथ्य का तब तक पर्याप्त सबूत होगा जब तक कि उसके विरुद्ध दर्शित नहीं किया जाता है।

(2) इस धारा में "तथ्य का निष्कर्ष" के अन्तर्गत यह निष्कर्ष है कि पति या पत्नी में से कोई भी उस देश में अभ्यासतः निवासी या अधिवसित था या वहां का राष्ट्रिक था, जिसमें विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण अभिप्राप्त किया गया था; और उपधारा (1) के खंड (क) के प्रयोजनों के लिए उस पति या पत्नी के बारे में जो न्यायिक कार्यवाहियों में हाजिर हुआ/हुई है, यह माना जाएगा कि उसने उसमें भाग लिया है।

अधिवास के आधार की मान्यता।

7. (1) पति पत्नी के अधिवास के देश से भिन्न किसी देश में अभिप्राप्त किए गए और उनके अधिवास के देश में विधिमान्य रूप में मान्यता दिए गए विवाह-विच्छेदों या विधिक पृथक्करणों को भारत में मान्यता दी जाएगी।

(2) किन्हीं भी ऐसी परिस्थितियों में, जिनमें भारत से बाहर के देश में अभिप्राप्त किए विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता को उपधारा (1) के आधार पर मान्यता तभी दी जाएगी यदि--

(क) पति या पत्नी में से कोई एक तात्विक समय पर उस देश में अधिवसित था; या

(ख) विवाह-विच्छेद या पृथक्करण को पति पत्नी के अधिवास की विधि के अधीन विधिमान्य रूप में मान्यता दी गई थी,

तो इसकी विधिमान्यता को भी, यदि उपधारा (3) का इस संबंध में समाधान किया जाता है मान्यता दी जायगी।

(3) इस उपधारा का भारत सरकार से बाहर किसी देश में अभिप्राप्त विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के संबंध में समाधान हो जाता है यदि--

(क) पति पत्नी में से एक तात्विक समय पर, उस देश में अधिवसित था और विवाह-विच्छेद या पृथक्करण को दूसरे पक्षकार के अधिवास की विधि के अधीन विधिमान्य रूप में मान्यता दी गई थी; या

(ख) पति पत्नी में से किसी के भी तात्विक समय पर उस देश में अधिवसित न होने पर, विवाह-विच्छेद या पृथक्करण को क्रमशः पति या पत्नी में से प्रत्येक के अधिवास के विधि के अधीन विधिमान्य रूप में मान्यता दी गई थी।

(4) उपधारा (2) या उपधारा (3) के किसी भी प्रयोजन के लिए, विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के संबंध में, "तात्विक समय" से उस देश में, जिसमें वह अभिप्राप्त किया गया था, कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने का समय अभिप्रेत है।

(5) उपधारा (1) से लेकर (3) तक के या इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति के आधार पर भारत से बाहर अभिप्राप्त विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों की विधिमान्यता की मान्यता पर धारा 4 से लेकर 6 तक का प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा किन्तु इस धारा के अधीन रहते हुए, इस प्रकार अभिप्राप्त किए गए किसी विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को, इन धाराओं द्वारा यथा उपबंधित के सिवाय, भारत में विधिमान्य रूप में मान्यता नहीं दी जाएगी।

पुनर्विवाह--1973 में संशोधित रूप में इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 7 से तुलना कीजिए।

8. जहां किसी देश में अभिप्राप्त किए गए विवाह-विच्छेद की विधिमान्यता धारा 3 के लेकर 6 तक के उपबंधों के आधार पर या धारा 7 की उपधारा (2) द्वारा परिरक्षित किसी नियम या अधिनियमिति के आधार पर मान्यता की हकदार है, वहां पति पत्नी में से कोई भी भारत में पुनर्विवाह करने से इस आधार पर प्रवारित नहीं किया जाएगा कि विवाह-विच्छेद की विधिमान्यता को किसी अन्य देश में मान्यता नहीं दी जाएगी।

9. (1) भारत से बाहर अभिप्राप्त किए गए विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता को भारत में मान्यता तब नहीं दी जाएगी यदि वह ऐसे समय पर मंजूर किया गया या अभिप्राप्त किया गया था जब भारत की विधि के अनुसार (जिसके अंतर्गत प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि के इसके नियम और इस अधिनियम के उपबंध भी हैं) पक्षकारों के बीच कोई अस्तित्वयुक्त विवाह नहीं था। किसी अस्तित्वयुक्त विवाह का न होना। इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8(1)(ख) से तुलना कीजिए।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, भारत से बाहर विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता को धारा 3 से लेकर 6 तक के या धारा (7) की उपधारा (2) के या धारा 7 की उपधारा (5) के आधार पर मान्यता देने से तब इन्कार कर दिया जाएगा यदि, और केवल यदि,— 1973 में संशोधित रूप में इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8(2) से तुलना कीजिए।

(क) वह पति या पत्नी में से एक के द्वारा—

(i) दूसरे पक्षकार को कार्यवाहियों की सूचना देने के लिए ऐसे उपाय किए गए बिना अभिप्राप्त किया गया था जो, कार्यवाहियों की प्रकृति और सभी परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए, युक्तियुक्त रूप से किए जाने चाहिए थे; या इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8(2)(क) से तुलना कीजिए।

(ii) दूसरे पक्षकार को कार्यवाहियों में भाग लेने के लिए ऐसा अवसर (सूचना की कमी से भिन्न किसी कारण से) दिए गए बिना अभिप्राप्त किया गया था जो उपर्युक्त मामलों का ध्यान रखते हुए, युक्तियुक्त रूप से उसे दिया जाना चाहिए था; या

(ख) वह कपट द्वारा अभिप्राप्त किया गया था या; या इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8(2)(ख) से तुलना कीजिए।

(ग) उसकी मान्यता स्पष्ट रूप से लोकनीति के विरुद्ध होगी।

(3) इस अधिनियम में किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह— इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8(3) से तुलना कीजिए।

(क) विवाह-विच्छेद या पृथक्करण के लिए किसी कार्यवाही में की गई त्रुटि के किसी निष्कर्ष की, या

(ख) किसी ऐसे कार्यवाही में किए गए किसी भरण-पोषण, अभिरक्षा या अन्य आनुषंगिक आदेश की, मान्यता के लिए अपेक्षा करती है।

10. विदेशी विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों से संबंधित इस अधिनियम के उपबंध इस अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख के पूर्व और उस तारीख को या उसके पश्चात् अभिप्राप्त किए गए किसी विवाह–विच्छेद या विधिक पृथक्करण को लागू होते हैं और उस तारीख से पूर्व अभिप्राप्त किए गए विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की दशा में,— इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8 (4) से तुलना कीजिए।

(क) उस तारीख से पूर्व किसी समय के संबंध में और किसी पश्चात्वर्ती समय के संबंध में उसकी विधिमान्यता की मान्यता की, यथास्थिति, अपेक्षा करते हैं या उसका निवारण करते हैं, किन्तु

(ख) किसी ऐसे सम्पत्ति के अधिकार पर प्रभाव नहीं डालते जिसका कोई व्यक्ति उस तारीख के पूर्व हकदार हुआ था या वहां लागू नहीं होते जहां विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता के प्रश्न का विनिश्चय उस तारीख के पूर्व भारत में किसी सक्षम न्यायालय द्वारा किया गया था।

11. विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की ऐसी डिक्रियों के प्रभाव के संबंध में जिन्हें यह अधिनियम लागू होता है, निम्नलिखित उपबंध उन विषयों की बाबत लागू नहीं होंगे, जिनके लिए इस अधिनियम में उपबंध किया गया है, अर्थात् :— कतिपय डिक्रियों के सम्बन्ध में कतिपय उपबन्धों के उपयोजन का उपान्तरण।

(क) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 41 और 44;

(ख) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13।

12. (1) जहां विदेशी विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को इस अधिनियम के आधार पर मान्यता दी जाती है, वह चाहे विदेशी न्यायालयों ने आनुषंगिक आदेश पारित किए हैं या नहीं कोई भी पक्षकार आनुषंगिक आदेश पारित करने के लिए सक्षम न्यायालय को आवेदन कर सकेगा। आनुषंगिक आदेश

स्पष्टीकरण 1—विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के लिए कार्यवाही के संबंध में "आनुषंगिक आदेश" के अन्तर्गत—

(क) कार्यवाही के किसी भी पक्षकार के भरण-पोषण के लिए, या

(ख) कुटुम्ब के बालकों की अभिरक्षा, शिक्षा या भरण-पोषण के लिए, या

(ग) पक्षकारों में से किसी भी पक्षकार की या उनकी संयुक्त संपत्ति के व्ययन के लिए,

कोई आदेश है।

स्पष्टीकरण 2—आनुषंगिक आदेश के उपयोजन के सम्बन्ध में "सक्षम न्यायालय" वह न्यायालय अभिप्रेत है जोकि, भारत में तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन,—

(क) यथास्थिति, विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथिकरण के लिए कार्यवाही का विचारण करने में तब सक्षम होगा, यदि आनुषंगिक आदेश के लिए आवेदन की तारीख को ऐसी कार्यवाही आवेदक द्वारा, विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण चाहते हुए, यथास्थिति, विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण के लिए उस विधि के अधीन उपलब्ध आधार पर संस्थित की जानी थी, और

(ख) जिसे उस आनुषंगिक आदेश को पारित करने की शक्ति होगी, जिसके लिए, विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथककरण की कार्यवाहियों की समाप्ति पर या उसके पश्चात् अब आवेदन किया गया है।

(2) ऐसा आवेदन किए जाने पर, न्यायालय विधि के अनुसार आवेदन सुनेगा और उसका निपटारा करेगा।

पत्नी का अधिवास और राष्ट्रीयता।

13. (1) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिऐ और उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् किसी भी समय किसी विवाहित स्त्री का अधिवास, केवल विवाह के आधार पर उसके पति का अधिवास होने के स्थान पर, वैसे ही तथ्यों के प्रति निर्देश से अभिनिश्चित किया जाएगा जैसा स्वतंत्र अधिवास रखने में समर्थ किसी अन्य व्यक्ति की दशा में होता है।

(2) जहां इस अधिनियम के प्रारम्भ से ठीक पूर्व कोई स्त्री विवाहित थी और उसके पश्चात् आश्रय द्वारा उसके पति का अधिवास उसका अधिवास हो गया था, वहां उसके बारे में यह माना जाएगा कि वह उस अधिवास को (यदि वह उसका मूल अधिवास नहीं है तो भी चयन के अधिवास के रूप में) उस समय तक प्रतिधारित किए हुए हैं जब तक कि वह या तो इस अधिनियम के प्रारंभ पर या उसके पश्चात् दूसरे अधिवास के अर्जन या पुनः प्रवर्तन द्वारा परिवर्तित नहीं हो जाता है।

आनुकल्पिक प्रारूप

(1) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए और उप-धारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए ऐसी स्त्री का अधिवास, जो विवाहित है या किसी समय विवाहित रही है, ऐसे अवधारित किया जाएगा मानो वह कभी विवाहित नहीं रही थी।

(2) जहां इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पूर्व कोई स्त्री विवाहित थी और उसके पश्चात् आश्रय द्वारा उसके पति का अधिवास उसका अधिवास हो गया था, वहां उसके बारे में यह माना जाएगा कि वह उस अधिवास को (यदि वह उसका मूल अधिवास नहीं है तो भी चयन के अधिवास के रूप में) उस समय तक प्रतिधारित किए हुए है जब तक कि वह या तो इस अधिनियम के प्रारंभ पर या उसके पश्चात् दूसरे अधिवास के अर्जन या पुनः प्रवर्तन द्वारा परिवर्तित नहीं हो जाता है।

दूसरा आनुकल्पिक प्रारूप

(1) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए और उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, विधि का कोई भी नियम, जिसके द्वारा कोई स्त्री अपने विवाह पर अपने पति के अधिवास या राष्ट्रीयता का अर्जन करती है, ध्यान में नहीं रखा जाएगा।

(2) जहां इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पूर्व कोई स्त्री विवाहित थी और उसके पश्चात् आश्रय द्वारा उसके पति का अधिवास उसका अधिवास हो गया था, वहां उसके बारे में यह माना जाएगा कि वह उस अधिवास को (यदि वह उसका मूल अधिवास नहीं है तो भी चयन के अधिवास के रूप में) उस समय तक प्रतिधारित किए हुए है जब तक कि वह या तो इस अधिनियम के प्रारंभ पर या उसके पश्चात् दूसरे अधिवास अर्जन या पुनः प्रवर्तन द्वारा परिवर्तित नहीं हो जाती है।

परिशिष्ट 2

विधि, न्याय और कम्पनी कार्यमंत्री का पत्र

पत्र सं० फा०7(6)/75-आई०सी०

नई दिल्ली-110001

मार्च 13, 1975

प्रिय श्री गजेन्द्रगडकर साहिब,

मुझे विश्वास है कि आपके आयोग के विद्वान सदस्यों ने श्रीमती सत्या बनाम तेजा सिंह [ए०आई०आर० 1975 एस०सी० 105-(1975) 1उम०नि०प० 894] में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को दिलचस्पी से पढ़ा होगा, जिसमें एक नेवेडा न्यायालय से हिन्दू पत्नी के विरुद्ध उसके हिन्दू पति द्वारा अभिप्राप्त विवाह-विच्छेद की डिक्री को मान्यता देने से, अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर इन्कार किया गया है कि वह कपट द्वारा अभिप्राप्त की गई थी। न्यायालय (न्यायाधिपति चन्द्रचूड़) ने इस बात पर ध्यान देने के पश्चात् कि विदेशी न्यायालय द्वारा प्रदान की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री को किसी अन्य न्यायालय में, शिष्टाचार, लोकनीति और सदाचार के आधार पर मान्यता दी जाती है, किन्तु वह शिष्टाचार किसी देश से दूसरे देश की ऐसी विवाह-विच्छेद विधियों को प्रभावी करने की अपेक्षा नहीं करता जो कि उसकी अपनी ही विधियों और लोकनीति के विरुद्ध हो, पृष्ठ 117 पर यह मत व्यक्त किया --

"खेद है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह पंगु है। उन्हें नेवेडा में विछिन्न विवाह माना जाएगा, किन्तु उनके अधिवास के देश भारत में उनका विवाह बन्धन अविच्छिन्न रहेगा"

"हमारे विधानमण्डल को ऐसी स्थितियों का कोई न कोई हल निकालना पड़ेगा जैसा कि ब्रिटेन की पार्लियामेंट ने कुछ हद तक यह हल 'रिकाग्नीशन आफ डाइवोर्सेस एण्ड लीगल सेपरेशन्स ऐक्ट, 1971' पारित करके निकाल लिया है। सम्भवतः 1970 की इण्टरनेशनल हेग कन्वेन्शन, जिसमें विधियों के विरुद्ध भिन्न-भिन्न पद्धतियों द्वारा कारित संभ्रम को कम करने के लिए सर्वांगीण स्कीम शामिल है, आदर्श के तौर पर कार्य कर सकती है किन्तु ऐसी विधि में अधिकारिता विषयक तथ्यों पर प्रभाव डालने वाली, कपट द्वारा प्राप्त विदेशी डिक्रियों को मान्यता न देने तथा उन डिक्रियों को मान्यता न देने के लिए उपबन्ध करना होगा जिनको मान्यता देना हमारी लोकनीति के विरुद्ध होगा।"

अतः मेरा आपसे अनुरोध है कि आप विधि आयोग द्वारा इस विषय की परीक्षा कराएं और हमें एक रिपोर्ट दें।

सादर,

भवदीय,

ह०/-

(एच० आर० गोखले)

डाक्टर पी०बी० गजेन्द्रगडकर,

अध्यक्ष, विधि आयोग, नई दिल्ली।

हम उस मूल्यवान सहायता के लिए अपना हार्दिक आभार प्रकट करना चाहेंगे, जो इस रिपोर्ट को तैयार करने में हमें आयोग के सदस्य-सचिव श्री बख्शी से प्राप्त हुई है।

पी० बी० गजेन्द्रगडकर	अध्यक्ष
पी० के० त्रिपाठी	सदस्य
एस० एस० धवन	सदस्य
एस० पी० सेन वर्मा	सदस्य
बी० सी० मित्रा	सदस्य
पी० एम० बख्शी	सदस्य-सचिव

नई दिल्ली, तारीख 5 अप्रैल, 1976

MGIPRRND—54 M of Law/78—VIII—26-6-80—400.